हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

वर्ष ५२ अङ्क २

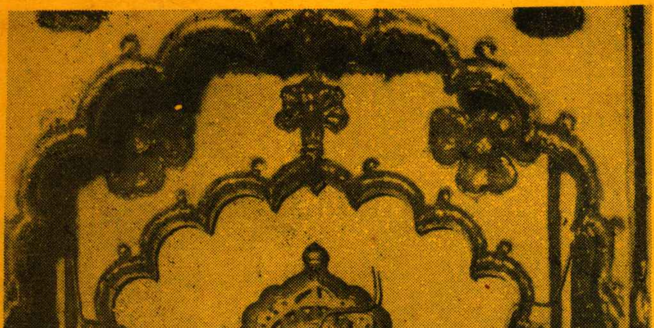

छोटी पटन देवी, पटना

इस अङ्क में —

पत्र-पत्रिकाओं द्वारा 'मन्त्र-शास्त्र' की भ्रामक प्रस्तुति

आदि शङ्कराचार्य की आध्यात्मिक परम्परा

'वन्दे मातरम्' राष्ट्र-गीत पर विवाद क्यों?

ज्योतिष-विधान के अन्तर्गत 'भद्रा' का रहस्य

श्रीमहा- विपरीत-प्रत्यंगिरा स्तोत्र (स-विधि)

भूत-शुद्धि की रीतियाँ ग्रह, आर्थिक, विवाह-बाधा-निवारण प्रयोग

भगवान् परशुराम और रेणुका-उत्सव

पर्व-सूची

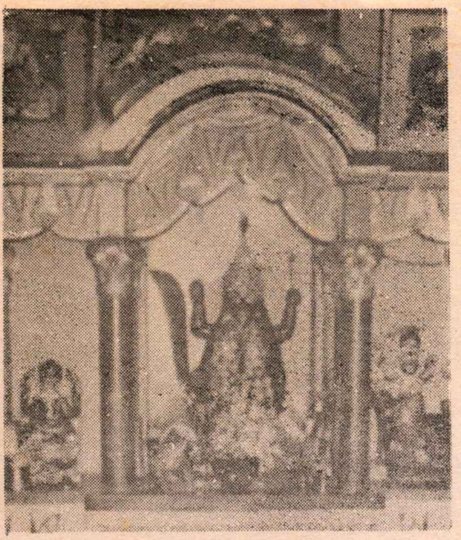

श्रीमाई जी द्वारा स्थापित' **श्रीश्यामा मन्दिर** द्वार पर श्रीगणेश जी

श्रीयोगिनी जी

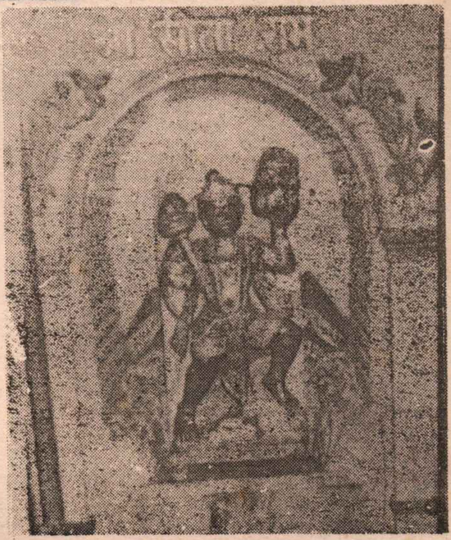

'श्रीहनुमान जी'

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ६

वार्षिक शुल्क : रु० ६५
आजीवन शुल्क : रु० ६५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ६००/४००
आजीवन : ६०००/४०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज—२११००६

वर्ष ५२] **[अङ्क २**

वैशाख, 'व्यय' सम्वत् २०५० वि० **मई, १९९३**

* * *

मनुआ रे !

मनुआ रेऽऽऽ—
—तारिणि तब मनुहारा।
जाके सुमिरत प्रलयित संकट—
—रहत न नकद उधारा।
सोइ तारिणि व्यापित बाह्यान्तर—
करुणा-मयि परम उदारा॥
मनुआ रेऽऽऽ—
जासु स्वरूप अवध-पति राघव—
—भव - वारिधि पतवारा।
तासु निरन्तर मानस - अर्चन—
कोटि जन्म अघ - क्षारा॥
मनुआ रेऽऽऽ—
शवारूढ़ आह्लादित मधु - रस—
—चितवन करुणा - धारा।
स्व-जनान्तर संविद हुलसावत—
—द्विज अमरेश सु-सारा॥
मनुआ रेऽऽऽ—

● **अमरेशानन्दाथ,** ९ मायापुर, यमदग्निपुर, **जौनपुर**

इस अंक में

- मनुआ रेऽऽऽ ! ... ३३
- पर्व-सूची (१ मई से) ... ३४
- मन्त्र-शास्त्र की भ्रामक प्रस्तुति ... ३५
- आदि-शङ्कराचार्य की आध्यात्मिक परम्परा ... ३९
- 'वन्दे-मातरम्' राष्ट्र-गीत पर विवाद क्यों ? ... ४१
- टेढ़ी खीर ... ४४
- 'भद्रा' का रहस्य ... ४६
- श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यंगिरा स्तोत्र ... ४९
- भूत-शुद्धि की रीतियाँ ... ५६
- ग्रह, आर्थिक, विवाह-बाधा-निवारण प्रयोग ... ५९
- भगवान् परशुराम और रेणुका-उत्सव ... ६०
- श्री षोडश्यै नमः ... ६२

पर्व-सूची

(वैशाख शुक्ल १०, 'व्यय' सम्वत् २०५० वि०-१ मई, ९३ से)

वैशाख शुक्ल ११	रविवार	२ मई, ९३	मोहिनी एकादशी-व्रत
वैशाख शुक्ल १२	सोमवार	३ मई, "	सोम प्रदोष-व्रत
वैशाख शुक्ल १३	मङ्गलवार	४ मई, "	श्रीनृसिंह जयन्ती
वैशाख शुक्ल १४	बुधवार	५ मई, "	श्री छिन्न-मस्ता जयन्ती
वैशाख शुक्ल १५	बृहस्पतिवार	६ मई, "	बुद्ध पूर्णिमा
ज्येष्ठ कृष्ण २	शुक्रवार	७ मई, "	श्रीनारद जयन्ती
ज्येष्ठ कृष्ण ४	रविवार	९ मई, "	श्रीगणेश चतुर्थी-व्रत
ज्येष्ठ कृष्ण ८	शुक्रवार	१४ मई, "	श्रीशीतला अष्टमी
ज्येष्ठ कृष्ण ११	सोमवार	१७ मई, "	अचला एकादशी-व्रत
ज्येष्ठ कृष्ण १२	मङ्गलवार	१८ मई, "	प्रदोष-व्रत
ज्येष्ठ कृष्ण १३	बुधवार	१९ मई, "	वट सावित्री-व्रत आरम्भ
ज्येष्ठ कृष्ण १५	शुक्रवार	२१ मई, "	शिव-रात्रि व्रत समाप्त
ज्येष्ठ शुक्ल ४	मङ्गलवार	२५ मई, "	वैनायकी चतुर्थी-व्रत
ज्येश्ठ शुक्ल ७	शुक्रवार	२८ मई, "	श्रीधूमावती जयन्ती
ज्येष्ठ शुक्ल ९-१०	रविवार	३० मई, "	गङ्गा दशहरा
ज्येष्ठ शुक्ल ११	सोमवार	३१ मई, "	निर्जला एकादशी-व्रत स्मार्त्त
ज्येष्ठ शुक्ल १२	मङ्गलवार	१ जून, "	निर्जला एकादशी-व्रत (वै.)

'चण्डी' मासिक पत्रिका के विक्रेता

'बिहार' प्रान्त के 'चण्डी' मासिक पत्रिका के प्रेमी बन्धुओं को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि बिहार प्रान्त के विभिन्न जिलों में 'चण्डी' मासिक पत्रिका के प्रचार एवं प्रसार के लिए निम्न-लिखित दो संस्थाएं सक्रिय रूप से कार्य-रत हो चुकी हैं। इच्छुक बन्धु इन संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। अन्य इच्छुक कर्मठ बन्धुओं से भी निवेदन है कि वे इनसे प्रेरणा लेकर अग्रसर होवें तथा 'धर्म'-कार्य में अपना सहयोग प्रदान करें। दोनों संस्थाओं के पते इस प्रकार हैं—

(१) सर्वश्री विद्याज्योति, ई-३० रोहिणी मार्केट, पुरानी पानी टंकी के सामने कंकडबाग, पटना (बिहार)
(२) सर्वश्री महा-विद्या संतति, चन्द्रा निवास, पश्चिमी लोहानीपुर, पटना (बिहार)

मन्त्र-शास्त्र की भ्रामक प्रस्तुति :

'कादम्बिनी' का विशेषांक : मन्त्र-शक्ति के चमत्कार और 'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र' पत्रिका

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

जनवरी, १९९३ के अङ्क में उक्त शीर्षक से प्रकाशित समीक्षा को पढ़कर अनेक पाठकों ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। मुम्बई (महा-राष्ट्र) से श्री रमनकुमार जी लिखते हैं :

"...आपने 'कादम्बिनी' के तन्त्र-विशेषाङ्क का जिक्र किया है। मुझे ऐसा लगा कि बहुत समय से इस विषय में प्राप्त जो साहित्य है, उसका कहीं ताल-मेल नहीं बैठता।...मैंने अभी तक जो सर्व-श्रेष्ठ तन्त्र पर पढ़ा है, सबसे ज्यादा अपने पूज्य गुरु 'राष्ट्र-गुरु' श्री स्वामी जी, श्री पीताम्बरा-पीठ तथा आदरणीय कविराज श्री गोपीनाथ जी तथा उनके गुरु श्री विशुद्धानन्द स्वामी जी का है। आगे का तो सब प्रैक्टिकल है।...अभी-अभी एक पत्रिका मेरे हाथों में आई है, जो मेरी समझ से बाहर है। उसकी कुछ कटिङ्ग आपको भेज रहा हूँ।...आप इसे भी 'श्रेष्ठ' पत्रिका 'चण्डी' में जरूर छापें, यह मेरा अनुरोध है।..."

उक्त पत्र के साथ जो कतरनें मिली हैं, वे हैं—जोधपुर (राजस्थान) से प्रकाशित **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-विज्ञान'** नामक पत्रिका के मार्च, १९९३ अङ्क की। उन्हें यहाँ आवश्यक टिप्पणियों के साथ उद्धृत किया जाता है। पहली 'कतरन' एक 'विज्ञापन' की है। यथा—

'...कुण्डलिनी - सिद्धि - साधना : **जीवन में कुण्डलिनी का उत्थान पूर्णता का सूचक है। इस बार** 'साधना-सत्र' में 'मन्त्रात्मक कुण्डलिनी-साधना' सम्पन्न **होगी, जो प्रत्येक साधक के लिए सौभाग्यदायक कही जा सकती है : एक दुर्लभ एवं अद्वितीय साधना।...'**

यदि कोई साधक उक्त 'साधना - सत्र' में सम्मिलित हुए हों और उसमें बताई गई **'मन्त्रात्मक कुण्डलिनी-साधना'** को जान सके हों, तो कृपया उस पर तथ्यात्मक प्रकाश डालें। वैसे जिन पाठकों के पास 'चण्डी-कार्यालय' द्वारा प्रकाशित **'सविधि कुण्डलिनी-साधना'** नामक पुस्तक (मूल्य १५ रुपए) हो, वे उसके पृष्ठ ४५ पर देखें। वहाँ शीर्षक छपा है—**'कुण्डलिनी की मन्त्रात्मक साधना'**।

कदाचित् इसी शब्दावली को उक्त विज्ञापन - लेखक ने **'मन्त्रात्मक कुण्डलिनी - साधना'** रूप दिया है क्योंकि जहाँ तक इस लेखक का ज्ञान है, इस पदावली का पहले पहल प्रयोग 'चण्डी'-पत्रिका में ही हुआ है।

दूसरी कतरन स्त्रियों को लुभानेवाली शैली में लिखा गया एक लेख है। पाठक बन्धु उसका आनन्द लें, साथ ही उसकी समीक्षा भी करते चलें—

'मैं चेलैंज देता हूँ कि कोई इन प्रयोगों को गलत सिद्ध कर दे ?'

मजे की बात यह है कि **'चेलैंज'** (?) कर्ता का नाम - पता गायब है। सम्भवतः पत्रिका के सम्पादक जी ही **'चेलैंज'** (?) दे रहे हों ! क्या ही अच्छा होता कि पहले वे 'चेलैंज' (?) को शुद्ध रूप में लिखना तो सीख लेते। अस्तु, आगे श्रीमान् लिखते हैं...

'...सौन्दर्य तो जीवन का वरदान है। प्रकृति की तरफ से प्रभु का आशीर्वाद है। आवश्यकता है, भली प्रकार से इन मन्त्रों और प्रयोगों को समझने की और तदनुरूप प्रयोग सम्पन्न करने की।...'

पाठक बन्धु ! कृपया विचार करें। सुनने में यह अवश्य अच्छा लगता है कि **'सौन्दर्य'** वरदान या आशीर्वाद है, किन्तु यह कथन क्या भ्रामक नहीं है ? जिस 'सौन्दर्य' के प्रति 'चेलैंज' (?) कर्ता का सङ्केत है, उसके कारण कितने ही व्यक्तियों का ही नहीं, कितनी ही जातियों और देशों के सवनाश हो चुके हैं। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। अतः आगे के **'प्रयोग'** सावधान होकर पढ़ना उचित होगा—

सौन्दर्य-प्राप्ति के छः अनुपम प्रयोग : **जीवन में सौन्दर्य एक आवश्यक और अनिवार्य वरदान है। स्त्रियों का तो पूरा आधार ही सौन्दर्य माना गया है। जो लड़की सुन्दर नहीं होती, उसके मन में कुण्ठा, असन्तोष और हीन भावना बन जाती है। वह सबसे कटी-कटी-सी रहती है। हर क्षण उसको ऐसा लगता है कि जैसे वह सबसे उपेक्षित और तिरस्कृत है।...'**

पुनः भ्रामक बातें ! क्या सुन्दर स्त्रियों में अहङ्कार-जन्य दोष नहीं आ जाते ? सुन्दरता के झूठे घमण्ड में वह सबसे कटी-कटी नहीं रहती ? असुन्दर स्त्री में यदि अपने प्रति हीन भावना बन जाती है, तो क्या सुन्दर स्त्री में दूसरों के प्रति हीन भावना नहीं बन जाती ? **'चेलैंज'** (?) देनेवाले महानुभाव को इस मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण से क्या लेना-देना ! वे तो **'सौन्दर्य'** के दीवाने हैं और सबको **'सौन्दर्य'** का दीवाना देखना चाहते हैं। तभी तो आगे लिखते हैं—

'...स्त्री के सौन्दर्य के छः तत्त्व प्रधान हैं—१. वह लम्बी - पतली, छरहरी तथा आकर्षक हो। २. उसका रङ्ग गोरा और चन्द्रमा के समान हो। ३. उसका चेहरा अण्डाकार, आँखें लम्बी और पैनी तथा होंठ रस-युक्त हों, ४. चेहरे पर या हाथों-पाँवों पर व्यर्थ के बाल न हों तथा वक्ष-स्थल उभरा हुआ, सुन्दर और कामोत्तेजक हो, ५. उसकी कमर पतली और नितम्ब भारी हों, ६. उसके चेहरे पर भोलापन, आँखों में मस्ती और चाल में अल्हड़पन हो। जिसके पास ये छः गुण होते हैं, वह युवती पूरे संसार को विजय कर सकती है।...'

धन्य हैं ! यह **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-विज्ञान'** की पत्रिका है या काम-शास्त्र की ? स्त्री - सौन्दर्य का ऐसा वर्णन कर वह अपने पाठकों को क्या सिखाना चाहती है ? वास्तव में वह कुछ सिखाना नहीं चाहती, उसे तो अपने व्यवसायी स्वामी की **'रतिराज गुटिका'** जैसी वस्तुओं की बिक्री बढ़ानी है। पहले ही प्रयोग में उसने **'स्वास्तिक'** (?) बनाने का निर्देश किया है। बताइए, जिस पत्रिका के सम्पादक को शुद्ध 'स्वस्तिक' शब्द तक का ज्ञान नहीं है, उनकी **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र'** सम्बन्धी बातें कहाँ तक सही होंगी ?

सच तो यह है कि **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र पत्रिका'** का मुख्य उद्देश्य है येन केन प्रकारेण रुपए कमाना। इसका प्रमाण है तीसरी 'कतरन', जिसमें **'सिद्धाश्रम गोल्डन कार्ड'** की योजना का विज्ञापन छपा है। इस योजना के अन्तर्गत ५१ हजार रुपए जमा करनेवाले को जीवन भर पत्रिका मुफ्त मिलेगी, कहीं भी शिविर लगेगा, तो उसमें निःशुल्क प्रवेश मिलेगा आदि-आदि ! पत्रिका में कैसा साहित्य दिया जाता है, उसका उदाहरण चौथी 'कतरन' में पढ़ने योग्य है। उसमें पत्रिका के अप्रैल ९३ के **'मन्त्र-शक्ति विशेषाङ्क'** के **'कुछ दुर्लभ लेख'** निम्न प्रकार बताए गए हैं—

'१. संसार का सर्वाधिक ज्वलित मन्त्र, जो परमाणु बम से भी ज्यादा विस्फोटक है। २. जिनकी नेत्र-ज्वाला से शत्रु बेहोश होकर गिर पड़ता था। ३. वह वशीकरण-मन्त्र, जिससे पत्थर भी

खिचा-खिचा पीछे चला आता है। ४. मैंने दम-खम के साथ यों कर्ण-पिशाचिनी सिद्ध की। ५. उसके घर का सारा काम-काज तो भूतों द्वारा होता है। ६. अब मन्त्रों से हर रोग का इलाज सम्भव है।'

जोधपुर की 'डा० श्रीमाली मार्ग' की उक्त पत्रिका तो 'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र' के व्यवसायी-करण के लिए प्रख्यात ही है। उसमें उक्त प्रकार का भ्रामक साहित्य प्रकाशित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु **भारतीय भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका**' होने का दावा करनेवाली **'कादम्बिनी'** भी उसी स्तर पर उतर आए, तो चकित रह जाना पड़ता है। **'हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन'** जैसे सर्व-सम्पन्न संस्थान से तो यह आशा थी कि वह यदि 'मन्त्र - तन्त्र' पर कुछ सामग्री प्रकाशित करेगा, तो उससे इस भारतीय गौरव को बढ़ानेवाली **'रहस्यमयी विद्या'** का प्रामाणिक एवं लोक-हितकारी ज्ञान लोगों को मिल सकेगा, किन्तु **'धन-लोलुपता'** के चक्कर में उसने भी वही सब किया, जो न किया जाना चाहिए।

'चण्डी' में प्रकाशित समीक्षा को पढ़कर पटना (बिहार) से **'अखिल भारतीय शाक्त-सम्मेलन'** के उपाध्यक्ष श्रद्धेय पण्डित गोविन्दशरण जी उपाध्याय (अधिवक्ता, पटना उच्च न्यायालय) ने अपने कृपा-पत्र दिनाङ्क १२ अप्रैल, ८३ में निम्न उद्‌गार व्यक्त किए हैं—

"....गत वर्ष भी दीपावली पर 'कादम्बिनी' का मन्त्र-शास्त्र-विषयक विशेषाङ्क प्रकाशित हुआ था। उसकी प्रति भेज रहा हूँ। क्या मखौल बना दिया है! आप स्वयं देख लीजिएगा। इन लोगों को जब विषय की कोई जानकारी नहीं है, तो इन्हें इस प्रकार अनर्गल लिखने का कोई अधिकार नहीं है। भ्रामक लेख छापकर बिना मतलब की भ्रान्ति फैलाना सर्वथा हर दृष्टि से अनुचित है।...."

श्रद्धेय उपाध्याय जी ने कितनी सटीक बात लिखी है। **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र'** तो अध्यात्म - विज्ञान की अति उच्च - स्तरीय बातें हैं। उनका वास्तविक अनुभूत ज्ञान इने-गिने मनीषियों को ही हो पाता है और जिन्हें वह ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, वे अन्तर्मुखी रूप से रहते हैं। उन्हें भाग्यशाली जिज्ञासु ही पहचान पाते हैं।

अधिकांश जिज्ञासुओं को **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र'** के मर्मज्ञ विद्वानों से ही समुचित ज्ञान मिल पाता है, किन्तु ये विद्वान् भी काल-चक्र के प्रवाह से इस देश में अल्प-संख्यक ही रह गए। ये आत्म - प्रचार से विमुख ही नहीं रहे, **'गोपनीयता'** के पीछे छिपे रहे।

अब बचे व्यवसायी मनोवृत्ति के लोग। उनमें भी आधिकारिक ज्ञान रखनेवाले लोग पूंजी के अभाव में अपने **'शास्त्रीय ज्ञान'** का वैसा प्रचार नहीं कर सके। ऐसी दशा में पूँजीपतियों का सहारा लेकर, वाग्-जाल रचने में निपुण लेखनी-सिद्ध लोगों की बन आई। ऐसे लोग न तो **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र'** की साधना में विधिवत् दीक्षा-प्राप्त हैं और न ही तत्सम्बन्धी साहित्य के अध्ययन में रुचि रखते हैं। उन्हें तो किसी-न-किसी प्रकार अपनी और अपने पूँजीपति मालिकों की जेब भरनी है। **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र'**-सम्बन्धी चामत्कारिक बातों को बढ़ा-चढ़ाकर लिखना और अपने अबोध पाठकों को मुग्ध करके धनार्जन करना ही उनका लक्ष्य है। **'मन्त्र - तन्त्र - यन्त्र'** विद्या के प्रति भ्रम फैलता है, तो फैले, उन्हें उसकी क्या चिन्ता!

चाहे दैनिक **'जन-सत्ता'** के सम्पादक श्री प्रभाष जोशी हों, या 'कादम्बिनी' के सम्पादक श्री राजेन्द्र अवस्थी या **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र'** के सम्पादक—यदि इनसे पूछा जाय कि 'क्या आपने **'सनातन-धर्म' की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की है अथवा इस 'धर्म' के कितने प्रामाणिक ग्रन्थों का आपने अध्ययन किया**

है ?' तो ये और इनके जैसे सभी सम्पादक बगलें झाँकने लगेंगे । इसके लिए इन **'पाश्चात्य सभ्यता'** के अभिमानियों को दोष देना उचित नहीं है । सच तो यह है कि **'मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र'** के सम्बन्ध में या **'धर्म'**-विषयक बातों पर जो ऊट-पटाँग चर्चा ये लोग करते रहते हैं, उससे इतना लाभ तो हुआ ही है कि इन 'विद्याओं' के प्रति देश की जनता का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है और वह दिन दूर नहीं है, जब इन विद्याओं की विधिवत् शिक्षा देने की व्यवस्था भी खुलकर सामने आ जायगी । तभी इस प्रकार की भ्रान्ति फैलानेवाले सम्पादकों पर अंकुश लग सकेगा ।

जहाँ तक **'अधिकार'** और **'कर्तव्य'** की बात है, उसकी चर्चा करनी आज के भ्रष्टाचार-प्रधान युग में व्यर्थ है । **'यथा राजा, तथा प्रजा'** की लोकोक्ति आज भी वैसी ही सार्थक है । 'राजा' का अर्थ है—'राज्य करनेवाला' अर्थात् **'शासन-तन्त्र'** । **'शासन-तन्त्र'** के भ्रष्टाचार से देश-वासी भले प्रकार परिचित हैं । फिर **'धर्म-तन्त्र'** भ्रष्टाचार से कैसे बच सकता है ? हिन्दू-धर्म के विविध धर्माचार्यों के विभिन्न विशाल भवन - परिसरों में जाकर देखिए । आप चकित रह जायँगे । कदाचित् ही किसी परिसर में **'धार्मिक-कर्म-काण्ड'** की शिक्षा की व्यवस्था आपको मिलेगी । दर्जनों कमरे एवं खुले परिसर सूनसान ! क्या धर्माचार्य - तन्त्र का यही कर्तव्य है ? कितने ही लोग **'चण्डी-कार्यालय'** आते रहते हैं, जिन्हें तथा-कथित **'धर्माचार्य'** द्वारा **'दीक्षा'** ही नहीं दी गई, **'अभिषेक'** भी कर दिया गया, किन्तु **'साधना'** का उन्हें **'क-ख-ग'** भी नहीं मालूम ! 'कान फूँकने' की इस रूढ़ि-वादिता ने ही भ्रामक लेख छापनेवाले उक्त सम्पादकों को बढ़ावा दिया है । **धर्म** - सम्बन्धी जो भी भ्रामक चर्चाएँ देश में होती हैं, उनका खण्डन करना क्या **'धर्माचार्य-तन्त्र'** का कर्तव्य नहीं है ?

'प्रबन्ध-व्यवस्था' के सूत्रधार आज जो लोग हैं, वे अंग्रेजी सभ्यता से अभिभूत हैं । इन सूत्रधारों में तो कुछ 'भारतीय संस्कार' विद्यमान भी हैं, किन्तु भारत की जो नई पीढ़ी अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षित हो रही है और जिनके मस्तिष्क को आधुनिक सञ्चार-माध्यमों द्वारा प्रदूषित किया जा रहा है, उनके सूत्रधार बनने पर **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र'** की कैसी व्याख्या होगी, उसकी कल्पना करते हुए हृदय काँप उठता है । ऐसी स्थिति में सर्वश्री जोशी, अवस्थी, श्रीमाली जैसे व्यावसायिक धुरन्धरों द्वारा **'मन्त्र-शास्त्र की जो भ्रामक प्रस्तुति'** की जा रही है, वह अभिनन्दनीय है क्योंकि इससे **मन्त्र-शास्त्र के अधिकारी विद्वानों को प्रेरणा मिलती है कि वे आगे आकर** उक्त **'भ्रामक प्रस्तुति'** का खण्डन ही न करें, **'मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र'** के वास्तविक मानव-कल्याणकारी स्वरूप के उद्घाटित करने को भी तत्पर हों । 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल द्वारा ५१ वर्षों पूर्व **'चण्डी'** पत्रिका के सूत्रपात करने का यही उद्देश्य था, और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह 'समीक्षा' प्रकाशित हो रही है । आशा है, मन्त्र-शास्त्र के अधिकारी विद्वान् एवं धर्माचार्य अपनी उदासीनता त्याग कर अपने कर्तव्य-पालन के प्रति सजग होंगे ।

आदि शङ्कराचार्य जयन्ती के उपलक्ष्य में :

अध्यात्म-परम्परा-सम्बन्धी एक दुर्लभ पाण्डुलिपि

प्रेषक : श्री जे० एल० भरद्वाज, राणीप, अहमदाबाद (गुजरात)

[**'परम्परा'** का महत्त्व अत्यधिक है क्योंकि उससे पिछले **'इतिहास'** का ज्ञान होता है और **'इतिहास'** के ज्ञान से कर्तव्य एवं अकर्तव्य का बोध होता है, जिससे मनुष्य अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए समुचित प्रयास कर सकत है। इसी दृष्टि से **'आध्यात्मिक क्षेत्र'** में भी विज्ञ पुरुषों ने **'श्रीगुरु-परम्परा'** को किसी-न-किसी रूप में सुरक्षित रखने का सदैव प्रयास किया है।

एक ऐसे ही प्रयास का परिचय मालीया, हाटीना, जूनागढ़ (गुजरात) के **'श्रीनाथ जी दीपकनाथ मनसुखनाथ'** के सौजन्य से प्राप्त निम्न प्राचीन हस्त - लिखित पाण्डु - लिपि से मिलता है। साथ ही **'आदि-शङ्कराचार्य की परम्परा'** का भी इसमें उल्लेख है। इस पाण्डु-लिपि के आद्य-संग्रहकार हैं **गुलाबनाथ मङ्गलनाथ** जी। आशा है कि पाठक बन्धु इस **'दुर्लभ पाण्डु-लिपि'** को ध्यान से पढ़ेंगे ही नहीं, इससे आध्यात्मिक उद्‌बोधन भी प्राप्त करेंगे। पाठकों की सुविधा के लिए 'पाण्डु-लिपि' को संशोधित कर दिया गया है।—सं०]

१ ॐ गुरु जी प्रथमे उत्पत्ति आद्य शून्य, २ आद्य शून्य से अनादि शून्य, ३ अनादि शून्य से योगाशून्य, ४ योगा (जोगा) शून्य से महा-शून्य, ५ महा-शून्य से निरा शून्य, ६ निरा शून्य से आत्म-शून्य, ७ आत्म-शून्य से प्रमाल-शून्य, ८ प्रमाल-शून्य से चेतन-शून्य, ९ चेतन - शून्य से अजोड़ी शून्य, १० अजोड़ी शून्य से ओङ्कार, ११ ओङ्कार से निराकार, १२ निराकार से निरञ्जन, १३ निरञ्जन से निर्भय, १४ निर्भय से अविनाशी, १५ अविनाशी से अविगत, १६ अविगत से निरालम्ब, १७ निरालम्ब से निर्लेप, १८ निर्लेप से निराकार, १९ निराकार से निराधार, २० निराधार से निर्विकार, २१ निर्विकार से निर्विकल्प, २२ निर्विकल्प से प्रीवहन, २३ प्रीवहन से भ्रमन, २४ भ्रमन से मन, २५ मन से मन-कुण्ड सुऋषि, २६ मनकुण्ड सुऋषि से मार्कण्डेय ऋषि, २७ मार्कण्डेय से रोम ऋषि, २८ रोम ऋषि से धौम्य ऋषि, २९ धौम्य ऋषि से विमल ऋषि, ३० विमल ऋषि से दत्तात्रेय, ३१ दत्तात्रेय से पराशर, ३२ पराशर से सारासुर, ३३ सारासुर से भरद्वाज, ३४ भरद्वाज से गौतम ऋषि, ३५ गौतम ऋषि से गर्गाचार्य, ३६ गर्गाचार्य से जड़ भरत, ३७ जड़ भरत से जनक विदेह, ३८ जनक विदेह से शुकदेव ऋषि, ३९ शुकदेव से केत ऋषि, ४० केत से सवेत ऋषि, ४१ सवेत से अहेन्या, ४२ अहेन्या से दुर्वासा ऋषि, ४३ दुर्वासा से वामदेव ऋषि, ४४ वामदेव से कामदेव, ४५ कामदेव से कर्दम ऋषि, ४६ कर्दम से कपिल ऋषि, ४७ कपिल से अक्ष मुनि, ४८ अक्ष मुनि से बशिष्ठ मुनि, ४९ वशिष्ठ से हृषीकेश मुनि, ५० हृषीकेश से देवमुनि, ५१ देवमुनि से देवाचार्य, ५२ देवाचार्य से सन्मुखाचार्य, ५३ सन्मुखाचार्य से द्रोणाचार्य,

५४ द्रोणाचार्य से महा - आचार्य, ५५ महा-आचार्य से गौडाचार्य, ५६ गौडाचार्य से बालगोविन्दाचार्य, ५७ बालगोविन्दाचार्य से ५८ श्री महन्त शङ्कराचार्य ।

श्री शङ्कराचार्य के चार शिष्य हुए—प्रथम अनुभवतीर्थ स्वरूपाचार्य के दो शिष्य—**तीर्थ और आश्रम**; द्वितीय पद्माचार्य के दो शिष्य—**वन** और **अरण्य**; तृतीय त्रोटकाचार्य के तीन शिष्य—**गिरि, पर्वत** और **सागर**; चतुर्थ पृथ्वीधराचार्य के तीन शिष्य—**सरस्वती, भारती** और **पुरी** । इस प्रकार संन्यास के दश नाम सम्पूर्ण हुए ।

आम्नाय-विवरण : (१) **पूर्व - आम्नाय** : पद्माचार्य, गोवर्धन - मठ, प्रकाश—ब्रह्माचार्य और कमला देवी, शाखा—तीर्थ और आश्रम । (२) **पश्चिम** आम्नाय : स्वरूपाचार्य, स्वरूप - ब्रह्मचारी, शारदा - मठ, भद्र-काली देवी, शाखा—वन और अरण्य । (३) **उत्तर आम्नाय** : त्रोटकाचार्य, नन्द ब्रह्मचारी जोशी-मठ, पूर्णागिरि देवी, नारायण देवता, शाखा—गिरि, पर्वत और सागर । (४) **दक्षिण आम्नाय** : पृथ्वीधराचार्य, चेतन ब्रह्मचारी, श्रृङ्गेरी-मठ, महा - काली देवी, शाखा—सरस्वती, भारती और पुरी ।

'ब्रह्मचारी' - पद में चार पद—**प्रकाश, स्वरूप, नन्द** और **चेतन** शब्द बड़े गहन - गम्भीर हैं । इसी प्रकार **'मठ, देवता, आम्नायादि'** शब्दों के गूढ़ार्थ हैं ।

श्री जगद्-गुरु श्रीमद् परम-हंस परिव्राजकाचार्य, श्रीआद्य शङ्कराचार्य भगवान्

श्रीहस्तामलकाचार्य	श्री सुरेश्वराचार्य	श्री पद्मपादाचार्य	श्री त्रोटकाचार्य
वन, अरण्य	भारती, सरस्वती, पुरी	तीर्थ, आश्रम	गिरि, पर्वत, सागर
मुख्य धाम	मुख्य धाम	मुख्य धाम	मुख्य धाम
पूर्व दिशा	पश्चिम दिशा	दक्षिण दिशा	उत्तर दिशा
श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र	श्री रामेश्वर क्षेत्र	श्री द्वारका पुरी	श्री बदरीनारायण
(गोवर्धन मठ जगन्नाथ पुरी)	(श्री श्रृङ्ग-गिरि मठ)	(श्री शारदा पीठ)	(श्री ज्योतिर्मठ)

विशेष : 'हिन्दू-धर्म-कोष' (मूल्य १२५ रु०) के पृष्ठ ६१७ के अनुसार शिष्य-परम्परा—

१ पद्मपाद : तीर्थ और आश्रम, **२ हस्तामलक** : वन और अरण्य, **३ सुरेश्वर** : गिरि, **पर्वत** और सागर, **४ त्रोटक** : पुरी, भारती और सरस्वती ।—सं०

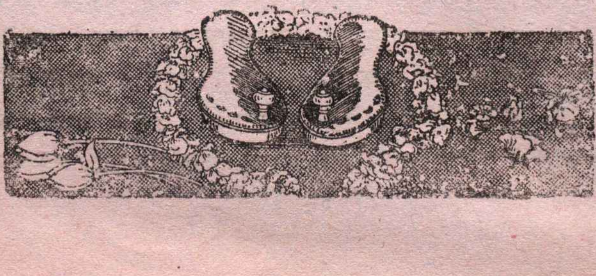

वन्दे मातरम्

राष्ट्र-गीत पर विवाद क्यों ?

ऋतशील शर्मा

[**श्रीप्रभाष जोशी** द्वारा सम्पादित हिन्दी दैनिक **जनसत्ता** से अधिकांश राष्ट्र-भाषा-प्रेमी पाठक परिचित हैं। इस दैनिक के १४ फरवरी, ९३ के रविवासरीय अङ्क द्वारा पवित्र गीत **'वन्दे मातरम्'** के विरोध के सम्बन्ध में झूठा प्रपञ्च रचने का प्रयत्न हुआ है। प्रस्तुत निबन्ध द्वारा इस झूठे प्रपञ्च का परिचय पाठकों को भली-भाँति हो जाएगा।—सं०]

यह केवल तथा-कथित धर्म-निरपेक्ष स्वतन्त्र भारत में ही सम्भव है कि **'वन्दे मातरम्'** जैसा निर्विवादित और निर्दोष राष्ट्र-गीत भी अविवेक-पूर्ण भ्रान्त धारणाओं के साथ कुछ लोगों के द्वारा विवाद के घेरे में घसीटा जाए। जब हमारा देश पराधीनता के बोझ से दबकर कराह रहा था, तब बङ्गाल के प्रसिद्ध कथाकार **श्री बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय** ने देश की दयनीय दशा का अनुभव कर तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप एक 'गीत' की रचना की थी। कालान्तर में यह स्वतन्त्रता-सेनानियों के लिए प्राणवन्त **'महा-मन्त्र'** सिद्ध हुआ।

क्रान्तिकारियों और देश-भक्तों में इस प्राणवन्त गीत अथवा **'महा - मन्त्र'** के गायन से 'भारत माता' के प्रति अटूट निष्ठा जाग्रत हुई। प्राणों का मोह, देश-भक्तों के मन से तब सर्वथा जाता रहा। वे हँसते-हँसते, छातियों पर गोलियों की बौछार को झेलने लगे। यही नहीं, उन्होंने **'वन्दे मातरम्'** की गूँज देश भर में मचाकर, हताश भारतीयों के हृदय में 'स्वतन्त्रता' की आशा और 'स्वदेशी' होने के उत्साह की ऐसी किरणें चमका दीं, जिनसे प्रायः सभी भारत-वासियों के हृदय में **'स्वदेश-प्रेम'** ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। इतिहास इसका साक्षी है। कोई भी देश-वासी भारत का इतिहास देखकर यह बात सहज ही जान सकता है।

अभी हाल ही में, दिल्ली से प्रकाशित होनेवाले एक राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक **'जनसत्ता'** में **'राष्ट्र-गान क्यों नहीं बना यह गीत'** शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसके द्वारा उक्त सत्य को तथ्य-हीन तर्कों, हास्यास्पद विचारों एवं कुछ कूटनीति से नकारने का प्रयास किया गया है। इसके प्रति देश-वासियों का ध्यान आकर्षित करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

'वन्दे मातरम्' और **'जन-गण-मन'** के विवाद का जन्म आजादी-प्राप्ति के क्षणों में, बँटवारे की भावना से प्रेरित होने पर हुआ था। १९३७ में, प्रान्तीय विधान-मण्डलों के निर्वाचन में, जब सीमा-प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में कांग्रेस सफल हुई, मुसलमानों के गढ़ पञ्जाब में मुस्लिम लीग असफल हुई तथा उत्तर प्रदेश में भी मुसलमानों के लिए सुरक्षित स्थानों में कांग्रेस के मुस्लिम उम्मीदवार विजयी रहे, तब मुस्लिम लीग के शिविर में निराशा व्याप्त हो गई और लीग के नेताओं ने

साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने का विशेष कु-चक्र प्रारम्भ किया। इस कु-चक्र के अन्तर्गत ही, १९३७ के लखनऊ के लीग के अधिवेशन में मुस्लिम लीग के सर्वेसर्वा जिन्ना ने **'वन्दे-मातरम्'** का विरोध किया। कारण **'वन्दे-मातरम्'** नारे के नीचे हिन्दू-मुस्लिम एकता स्पष्टतया दृष्टि-गोचर होती थी।

मुस्लिम लीग द्वारा प्रारम्भ किए गए उक्त विवाद के मूल में कोई विशेष तथ्य की बात नहीं थी अपितु सोची-समझी रण-नीति के अन्तर्गत मुस्लिम समाज को बहु - संख्यक हिन्दू - समाज से अलग-थलग करने की चाल मात्र थी, जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। लगभग १० वर्षों के अन्तराल में बँटवारे का स्वप्न पूरा हो गया। इतिहास के पृष्ठ इसके प्रमाण हैं। ऐसी बात नहीं कि इस तथ्य को उस समय समझा न गया हो। समझा ही नहीं अपितु बताया भी गया था। दुर्भाग्य से साम्प्रदायिक विद्वेष के सङ्गठित कु-प्रचार के प्रभाव - वश मुस्लिम समाज का एक वर्ग उसे समझ नहीं पाया। सन् १९३७ में ही, उत्तर भारत में सुभाष बाबू की एक मीटिङ्ग में जब कुछ मुस्लिम लीगियों द्वारा प्रबल व्यवधान डालने का प्रयत्न हुआ, तब सुभाष बाबू ने कहा था—**'आज कुछ लोग पसन्द नहीं करते कि हिन्दू-मुसलमान एक नारे के नीचे इकट्ठे हों, इसीलिए वे यह व्यवधान उत्पन्न कर रहे हैं।'** सुभाष बाबू का उक्त कथन आज भी प्रायः सही है। एक विभाजन के बाद भी कुछ लोग आज यह नहीं चाहते कि हिन्दू-मुसलमान एक नारे के नीचे इकट्ठे हों।

'राष्ट्र-गान क्यों नहीं बना यह गीत' लेख के प्रारम्भ में यह कहा गया है कि—'बङ्किमचन्द्र चटर्जी के लिखे **'वन्दे-मातरम्'** को लेकर एक बार फिर गरमा-गरम बहस छिड़ी है।··· ताजा विवाद में **'जन-गण-मन'** बनाम **'वन्दे-मातरम्'** का मामला रहा है।··· यह हमारी बदकिस्मती नहीं, तो और क्या है कि समाज में तेजी से पनपते साम्प्रदायिक रुझानों के चलते किसी भी मामले पर सार्थक और गम्भीर बहस नहीं हो सकती' और लेख के अन्तिम अनुच्छेद में कहा गया है कि—'इस गाने को लेकर विवाद तब पैदा हुआ, जब आजादी के बाद राष्ट्रीय-गान' के चयन का सवाल सामने आया। डा० राजेन्द्र-प्रसाद ने २४ जनवरी, १९५० को अपना यह निर्णय सुनाया कि **'जन-गण-मन'**, जिसे टैगोर ने १९११ में रचा था **'राष्ट्र-गान'** होगा और **'वन्दे-मातरम्'** को **'राष्ट्र-गीत'** का सम्मान प्राप्त होगा।'

प्रश्न उठते हैं कि जब यह ज्ञात है कि महा-महिम राष्ट्र-पति ने **'वन्दे-मातरम्'** को **'राष्ट्र-गीत'** घोषित किया है, तब किसी को इस पर कैसी सार्थक और गम्भीर बहस करनी है? **'जन-गण-मन'** को **'राष्ट्र-गान'** एवं **'वन्दे-मातरम्'** को **'राष्ट्र-गीत'** का सम्मान प्राप्त हो चुका है, तब यह विवाद क्यों उठाया जा रहा है? वस्तुतः विवाद तो **'वन्दे-मातरम्—राष्ट्र-गीत' के प्रति सम्मान** का है।

'वन्दे-मातरम्' गीत की रचना और इतिहास से सम्बन्धित कुछ बुनियादी तथ्यों को देखें। उक्त लेख में लिखा गया है कि—'बङ्किमचन्द्र चटर्जी ने इस गीत की रचना १८७५ में की। वे उस समय बङ्गाली पत्रिका **'बङ्ग-दर्शन'** का सम्पादन कर रहे थे। इस पत्रिका में यह गीत पहली बार छपा था। यह गीत आधा संस्कृत और आधा बँगला में रचा गया, जो अपने आप में असामान्य बात लगती थी।··· **'वन्दे-मातरम्'** अपनी रचना के तुरन्त बाद ही विवादों के घेरे में रहा।··· इसे गम्भीर साहित्यिक कृति के रूप में मान्यता नहीं मिली।··· वन्दे मातरम् को उत्तर भारत में लोक - प्रिय होने के लिए ३२ वर्ष इंतजार करना पड़ा।'

सम्भवतया लेखक को यह ज्ञात नहीं कि जिन्हें वह संस्कृत के शब्द समझ रहे हैं, वे बँगला के भी बोल हैं। फिर, उस समय गीतों की वही लोक - प्रिय शैली थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीत भी इस

लोक - प्रिय शैली के ही कुछ परिमार्जित स्वरूप थे। यही नहीं, यदि **'वन्दे - मातरम्'** गीत में कोई असामान्य बात होती, तो भला रवीन्द्रनाथ जी इस गीत को अपने कण्ठ से क्यों गाते ? क्या वे उसमें सुधार न करते ?

लेखक महोदय, **'वन्दे - मातरम्'** गीत की कैसी साहित्यिक मान्यता चाहते हैं, समझ में नहीं आता। सम्भवतः उन्हें 'नोबुल'-पुरस्कार की मान्यता चाहिए ! अरे, जिस 'गीत' से लाखों लोगों के मन और मानस झंकृत हो उठें, क्या वह साहित्यिक नहीं है ?

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बङ्किम बाबू ने इस गीत की रचना यों ही नहीं कर दी थी। वे स्वयं ऋषि-तुल्य महा-पुरुष थे ! उन्होंने **'वन्दे-मातरम्'** की प्राचीन परम्परा का साक्षात्कार किया था और उससे साधारण देश-वासियों को परिचित कराने की आवश्यकता का अनुभव किया था। **'वन्दे-मातरम्' की प्राचीन परम्परा को यदि देखना-समझना है, तो वैदिक संहिताओं में इससे सम्बन्धित सूक्तों को देखना पड़ेगा।** बङ्किम ऋषि ने कठिन वैदिक सूक्तों को एक सुन्दर 'गीत' के रूप में देश-वासियों के समक्ष रखा, जिससे वे प्रबल देश-प्रेम-मय होकर पराधीनता से मुक्ति के लिए निर्णायक लड़ाई लड़ सकें और यही हुआ भी। क्या यह महत्त्व-पूर्ण और गम्भीर साहित्यिक कृत्य नहीं था ?

यह कहना भी सर्वथा त्रुटि-पूर्ण है कि १८६४ में बङ्किम बाबू की मृत्यु के बाद तक यह गीत लोक-प्रिय नहीं हुआ। वास्तव में, १८८५ में कांग्रेस के अधिवेशन में, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कल-कण्ठ द्वारा गाया जाना ऐतिहासिक तथ्य, इस गीत की लोक-प्रियता को ही स्पष्ट करता है।

'वन्दे-मातरम्' की लोक-प्रियता और सार-गर्भित तत्त्वों को देखते हुए ही महर्षि अरविन्द ने तब **'वन्दे-मातरम्'** नामक अखबार निकाला था, जो उस समय स्वतन्त्रता-संग्राम-सेनानियों के लिए विशेष प्रेरणा का स्रोत बना। जहाँ तक इसके उत्तर भारत में लोक-प्रिय होने में समय लगने की बात है, तो ऐसा लगता है कि मानों लेखक किसी फिल्म के 'हिट' होने की बात कर रहा हो ! **यह स्वदेश-प्रेम-जागरण** की बात है। इसमें बङ्गाल, महा-राष्ट्र अग्रणी रहे हैं, ये ऐतिहासिक तथ्य हैं। इसमें **'वन्दे-मातरम्'** की लोक-प्रियता को क्यों घसीटा जाय ?

'वन्दे-मातरम्' गीत के सम्बन्ध में कांग्रेसी मुसलमानों द्वारा विवाद पैदा करने की बात कहना भी हास्यास्पद एवं कूटनीति-पूर्ण है। यह सरासर झूठ है कि सबसे पहले कांग्रेस से जुड़े मुसलमानों ने बेहतर गीत की माँग करते हुए **'वन्दे-मातरम्'** का विरोध किया था। साथ ही यह भी झूठ है कि बौद्ध, जैन, सिक्ख और ईसाई धर्मों के अनुयायियों व आर्य - समाजियों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई थी। लेखक ने बहुत चालाकी के साथ विवाद के असली जन्म-दाताओं को छिपाने की कोशिश की है। **'वन्दे-मातरम्' विरोध का प्रारम्भ मुस्लिम लीग के सर्वेसर्वा जिन्ना द्वारा हुआ था।** यह कोई मन - गढ़न्त बात नहीं है। इसके प्रचुर प्रमाण हैं। हिन्दी की ऐतिहासिक मासिक पत्रिका **'सरस्वती'** के दिसम्बर, १९३७ और १९३९ के अङ्कों में प्रकाशित टिप्पणियाँ प्रमाण के रूप में रक्खी जा सकती हैं। इन टिप्पणियों में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी हुई है कि **'वन्दे-मातरम्'** राष्ट्र-गीत के प्रति विवाद का सूत्र-पात मुस्लिम लीग के सर्वेसर्वा श्रीयुत मुहम्मद अली जिन्ना ने लखनऊ के लीग के अधिवेशन में किया था। फलतः कांग्रेस की कार्य-कारिणी समिति को कलकत्ते की बैठक में इस प्रश्न का समाधान करना पड़ा और उसने **'वन्दे-मातरम्'** गीत के उस अंश को, जो राजनैतिक सभाओं में गाया जाता रहा है, **'राष्ट्रीय गीत'** के रूप में स्वीकार करने की घोषणा कर दी।'

[शेष पृष्ठ ४४ पर]

टेढ़ी खीर

• पण्डित ज्वालाप्रसाद तिवारी

लड़के ने बाप से पूछा—दादा, ईश्वर क्या है ? क्या ईश्वर जीव-धारी है ?

बाप ने उत्तर दिया—ईश्वर मनुष्य है, स्त्री है, जीव-धारी है। यही नहीं, एक पत्थर का टुकड़ा भी है।

लड़के को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। झट बोल उठा—दादा, ईश्वर एक पत्थर का टुकड़ा ! यह कैसे ?

"मैं तो पत्थर का टुकड़ा कहकर चुप हो गया। मुझे कहना था कि संसार जितने कणों से बना हुआ है, वे सब ईश्वर के स्वरूप हैं।" बाप ने उत्तर दिया।

लड़का भौचक्का-सा रह गया। बोला—कल मैंने महात्मा जी को, जो पीपल के वृक्ष के नीचे धूनी जमाए बैठे रहते हैं, कहते सुना था कि ३३ करोड़ हिन्दुओं के देवता हैं। क्या वे ३३ करोड़ भी भगवान् हैं ?

'बेटा, मैंने जब यह कह दिया कि हर कण ईश्वर का ही स्वरूप है, तो ये देवता भी तो उसी में आ गए।'

लड़का—जब हर कण भगवान् का स्वरूप है, तो फिर क्यों शिव के मन्दिर में जाकर **'बम् बम् भोले'**; काली के मन्दिर में जाकर **'जय जगदम्बे'**—इसी भाँति **'जय श्रीराम'**, **'जय श्रीकृष्ण'** इत्यादि कहकर लोग पुकारते हैं !—सब लोग हर पदार्थ को देखकर उसी को पूजना तथा नमस्कार करना ही ईश्वर की पूजा क्यों नहीं समझते ?

दादा—ईश्वर के नाम लोगों ने बहुत से रख लिए हैं। जितने नाम तूने लिए या सुने, सभी ईश्वर के नाम हैं। **विष्णु-सहस्र-नाम** की पुस्तक में ये सब नाम मिलेंगे परन्तु तुझे सन्देह होगा कि सबकी अलग-अलग मूर्तियाँ अथवा स्वरूप क्यों हैं ? यह भी सब काल्पनिक हैं। तुलसीदास जी ने रामायण में कहा भी है **'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।'** मनुष्यों ने भी अपनी कल्पना से ही विचित्र - विचित्र रूप की जिस शक्ति को मानना चाहा, उसे वैसा बना लिया और उसी सबका पूजन तथा उसी मूर्ति के नाम का भजन करना प्रारम्भ कर दिया।

[शेष पृष्ठ ४३ का]

हिन्दी के दैनिक **'जनसत्ता'** के उपर्युक्त लेख के अन्त में चतुराई के साथ अल्प-संख्यक समुदाय के अलावा धर्म-निरपेक्ष और उदारवादी विचार रखनेवालों का हवाला देते हुए, यह कहा गया है कि **'आनन्द-मठ'** उपन्यास अल्प-संख्यक समुदाय के प्रति जहर उगलता है। यह आक्षेप भी अपने - आप में थोथा है। ऐसे ही बेबुनियादी तर्कों द्वारा हमारे यहाँ पहले साम्प्रदायिक विषमता के बीज बोए गए थे, जो पढ़े-लिखे लोगों द्वारा पुष्पित होकर, बँटवारे के वृक्ष के रूप में साकार हुआ। ऐतिहासिक उपन्यास के कथ्य को समूची जाति के विरुद्ध मानने की दुष्प्रवृत्ति से हमें बचना ही चाहिए। लगता है कि अभी भी हमने इतिहास से न तो शिक्षा ही ग्रहण की है और न ग्रहण करना ही चाहते हैं।

अन्त में, **'वन्दे-मातरम्'** निर्विवाद और निर्दोष है। पवित्र राष्ट्र-गीत में कुछ लोगों को **'मूर्ति-पूजा'** की भनक दिखलाई पड़ती है, तो क्या 'जन-गण-मन' उससे अछूता है ? 'जय हे ! जय हे !' के बोल भी क्या सगुण **'मूर्ति-पूजा'** की ध्वनि नहीं देते ?

वास्तव में जैसा तूने कहा, वैसा ही करना उचित जान पड़ता है क्योंकि हर कण में जब उसका स्वरूप है, तो हर कण ईश्वर भी है, परन्तु ऐसा नहीं किया जाता। कारण यह है कि प्रत्येक जीवधारी की बुद्धि पृथक् - पृथक् है। इसी बात को समझाने के लिए तुझे बहुत प्रश्न करने पड़ेंगे और मुझे उत्तर देने पड़ेंगे। तू बच्चा है, सब बातों को ठीक-ठीक समझ लेना तेरे लिए दुष्कर होगा। अतएव तुझे अन्य पुरुषों की भाँति **ईश्वर का भजन** करना अत्युपयोगी होगा। हाँ, इतना अवश्य है कि यदि तू अभी से इन बातों पर सोचना आरम्भ कर देगा और साथ-ही-साथ **मूर्ति-पूजन** भी करता रहेगा, जिससे तेरे प्रेम की मात्रा दिन-पर-दिन ईश्वर की ओर बढ़ती जाय, तो सम्भव है कि एक दिन आए, जब मूर्ति-पूजन छूटकर ईश्वर का रूप तुझे प्रत्येक पदार्थ में दिखाई पड़ने लगे। उसी समय तू समझ लेना कि तू इस परीक्षा में पास हो गया।

लड़का—मैंने देखा है कि बहुत से भक्त और पुजारी अन्त समय तक मूर्ति-पूजा करते रहते हैं। क्या वे यह परीक्षा उम्र भर भी न पास कर सके?

दादा—मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि उम्र भर मूर्ति-पूजन करनेवाला अपनी परीक्षा पास नहीं होता। कुछ लोगों का स्वभाव पड़ जाने के कारण वे उच्च परीक्षा करने के बाद भी अपनी पुरानी किताबों को पढ़ते रहते हैं। कुछ लोगों को तुमने देखा होगा कि इण्टर भी पास नहीं करते। अतः कोई अचम्भे की बात नहीं कि उम्र-भर मूर्ति-पूजन करते हुए भी कुछ लोग तत्त्व को नहीं पकड़ पाते और न उनका अधिक कल्याण ही होता है। इतना कहना ठीक होगा कि अखाड़े में पड़े रहने से कभी-न-कभी व्यक्ति पहलवान हो ही जाता है। इसके अर्थ यह नहीं कि वह अच्छा पहलवान बन जाता है परन्तु साधारण मनुष्यों की दृष्टि में पहलवान अवश्य हो जाता है। इसी भाँति जितना कल्याण इस जीव का होना चाहिए, उतना नहीं होता परन्तु लाभ तो होता ही है।

लड़का—इस गूढ़ार्थ को न समझ सका, दादा। उदाहरण देकर विस्तार से समझाइए।

दादा—बेटा, नमक बनता है समुद्र के पानी से। समुद्र के पानी से बना हुआ नमक वास्तव में ठोस रूप में समुद्र का पानी है। जब तक वह फिर गलकर पानी के रूप में नहीं हो जाता, तब तक समुद्र में पड़ा हुआ भी समुद्र नहीं कहलाएगा। जब गलकर पानी हो जाएगा, तब उसे समुद्र में से पृथक् करना असम्भव होगा। इसी भाँति जब तक जीव 'ईश्वर'-मय नहीं हो जाता, तब तक वह ईश्वर से उतना ही दूर है, जैसे नमक का ढेला समुद्र में पड़ा हुआ भी समुद्र नहीं बनता। या यों कहो कि जब तक जीव एक मूर्ति ही में ईश्वर को देखता है, तब तक ईश्वर का रूप होते भी वह ईश्वर से अलग ही रहता है।

लड़का—दादा, यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है। समझ लेने में ही दिमाग थक जाता है। अब मैं किसी और दिन इसे समझने का पुनः प्रयत्न करूँगा।

दादा—ठीक है परन्तु इसको टेढ़ी खीर मत समझो। टेढ़ी खीर उसे कहते हैं, जो गले से न उतर सके अर्थात् समझना ही असम्भव हो, परन्तु यह बात ऐसी नहीं। इसको सहल समझ कर समझने का प्रयत्न करो। जिस दिन समझ में आ जाएगा, यही टेढ़ी खीर सीधी और स्वादिष्ट खीर हो जाएगी। मैं तो तुझे और समझाने का प्रयत्न करता, परन्तु तू अभी थक गया है। किसी दिन पूर्णतया समझा दूँगा और अच्छे ढङ्ग से बताऊँगा।

'भद्रा' का रहस्य

• 'कुल-रत्न' पण्डित सतीशकुमार उपाध्याय

ज्योतिष-शास्त्र का ज्ञान न रखनेवाले 'भद्रा' से भले ही परिचित न हों, परन्तु प्रचलित लोक-मुहावरों से यथा 'भद्रा उतारना' (मरम्मत करना) तथा 'भद्रा लगना' (विघ्न पड़ना) से सुधी पाठक अवश्य परिचित होंगे। एक कहावत है—'घरी में घर जरै, अढ़ाई घरी भद्रा'। कहावत का भले ही साहित्यिक प्रयोग हो, परन्तु 'भद्रा' का वास्तविक परिचय ज्योतिष-शास्त्र से ही मिलता है। साहित्यिक दृष्टि से 'भद्रा' भले ही 'भद्र' की स्त्री-वाचक संज्ञा हो तथा वैदिक दृष्टि से 'आकाश-गङ्गा' की प्रतीक हो, परन्तु मुझ असाहित्यिक का इससे क्या लेना-देना !

हे बन्धु ! मेरा प्रयोजन तो इस निर्देश पर आश्रित है, जिसमें स्वर-विज्ञान के मर्मज्ञ ने, लोक-भाषा में, 'भरणी' एवं 'भद्रा' के सम्बन्ध में, एक युक्ति बताई है। यह युक्ति यात्रा के सन्दभ में है। कहावत है—**"भरणी भद्रा एक न लीजै, जो स्वर चलै वही पग दीजै।"** अतः 'भद्रा' का लौकिक शब्द-परिचय होते हुए भी ज्योतिष की दृष्टि से इसकी चर्चा करना समीचीन होगा।

ज्योतिष-शास्त्र में 'भद्रा' तिथि-वाचक तथा करण-वाचक दोनों है। वाराहमिहिर के अनुसार द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी तिथियों की संज्ञा 'भद्रा' है, परन्तु इस भद्रा से अमाङ्गलिक मुहूर्त का ज्ञान प्राप्त नहीं होता। फलित ज्योतिष की दृष्टि से जिस 'भद्रा' का प्रयोग इस अर्थ में करते हैं, वह 'करण' का एक प्रकार है।

तिथि का अर्ध-भाग एक 'करण' है अर्थात् एक तिथि में दो करण तथा एक चन्द्र-मास में [३०×२=६०] साठ 'करण' होते हैं। कुल 'करण' ग्यारह होते हैं, जिनमें क्रमशः १. बव (भव), २. बालव, ३. कौलव, ४. तैतिल, ५. गर (गज), ६. वणिज, ७. भद्रा (विष्टि) 'चर करण' हैं तथा १. शकुनि, २. चतुष्पाद, ३. नाग एवं ४. किंस्तुघ्न 'स्थिर करण' हैं।

'स्थिर करण' कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के उत्तरार्ध से प्रारम्भ होकर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध तक स्थिर होते हैं तथा एक चन्द्र-मास में एक ही बार आते हैं, जब कि 'चर करण' एक चन्द्र-मास में आठ बार आवृत्ति करते हैं। 'चर करण' की आवृत्ति नीचे दिए ज्योतिष-सूत्रों के अनुसार निकाल सकते हैं—

करणानयन—कृष्ण पक्ष में 'चर करण' ज्ञात करने की विधि यह है कि सर्व-प्रथम इष्ट-तिथि को दो से गुणा करे। गुणन-फल में सात से भाग दीजिए। जो संख्या शेष बचे, पूर्व दी गई उसी संख्या-वाला 'करण' उस तिथि के पूर्वार्द्ध का 'करण' होगा तथा उस 'करण' के आगे का 'करण' उस तिथि के उत्तरार्ध का 'करण' होगा। उदाहरण के लिए कृष्णा दशमी का 'करण' निकालने के लिए १०×२=२०÷७=६ शेष होगा। अतः छठवाँ अर्थात् **'वणिज करण'** दशमी के पूर्वार्द्ध में तथा उससे अगला **'भद्रा करण'** उत्तरार्ध में होगा।

शुक्ल पक्ष में इष्ट-तिथि में दो का गुणा करके दो घटा देते हैं। तब शेष संख्या में दो का भाग देते हैं। प्राप्त संख्या ही उस तिथि के पूर्वार्द्ध की 'चर करण' संख्या है। यथा—शुक्ला अष्टमी को यदि 'करण' निकालना है, तो ८=२=१६ होगा। १६−२=१४ होगा। १४ में ७ का भाग देने पर शून्य

शेष बचेगा। सात का भाग दे रहे हैं, अतः शून्य या सात समान-वाचक हैं। अतः उस तिथि को सातवाँ करण 'भद्रा' शुक्ला अष्टमी तिथि के पूर्वार्द्ध में होगा।

इस प्रकार आपने देखा कि 'भद्रा' या 'विष्टि' सातवाँ 'चर करण' है। गणना से बचने के लिए आप यह याद कर सकते हैं कि किन तिथियों के पूर्वार्द्ध या उत्तरार्ध में 'भद्रा' होगी। 'भद्रा करण' कृष्ण पक्ष की तृतीया एवं दशमी तथा शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तथा एकादशी तिथियों के उत्तरार्ध में होती है, जबकि कृष्ण पक्ष की सप्तमी तथा चतुर्दशी एवं शुक्ल पक्ष की अष्टमी तथा पूर्णिमा तिथियों में पूर्वार्द्ध में होती है। ज्योतिष-शास्त्र के इतिहास की दृष्टि से 'करण' का प्रयोग ४०० ई० से प्रारम्भ हुआ है, जिसमें 'भद्रा' या 'विष्टि' को कार्य-नाशक या अमङ्गल-कारी माना गया है। इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि 'भद्रा' सदैव अशुभ होती है। वैसे अशुभ योगों में शुभ योगों के आने पर अशुभ योगों का परिहार हो जाता है, परन्तु 'भद्रा' के सन्दर्भ में निम्न बातें भी ज्ञातव्य हैं—

१. 'भद्रा-मुख' अशुभ तथा 'भद्रा-पुच्छ' शुभ होता है। २. दिन में तिथि के उत्तरार्ध की 'भद्रा' शुभ तथा रात्रि में तिथि के पूर्वार्द्ध की 'भद्रा' शुभ होती है, इसके विपरीत अशुभ होती है। ३. 'भद्रा' जिस लोक में होती है, उसका फल वहीं देती है।

अब यह आवश्यक है कि 'भद्रा-मुखादि' तथा 'लोक-वास' का ज्ञान प्राप्त किया जाय। भद्रा-मुखादि के ज्ञान के लिए प्रहर की जानकारी आवश्यक है। 'प्रहर' का अर्थ दिन (सूर्योदय से सूर्योदय तक) के आठवें भाग से है। इसे 'याम' भी कहते हैं। एक दिन में २४ घण्टे या ६० घटी, अतः एक प्रहर में ३ घण्टे या ७½ घटी। चार दिवा तथा चार रात्रि - प्रहर मिलाकर—कुल आठ प्रहर होते हैं। यदि सूर्योदय-काल ६ बजे प्रातः है, तो ६–९ प्रथम, ९–१२ द्वितीय, १२-३ तृतीय, सायं ३–६ चतुर्थ, ६–९ रात्रि पञ्चम, ९–१२ रात्रि षष्ठ, १२–३ रात्रि सप्तम तथा ३–६ प्रातः अष्टम प्रहर होगा।

भद्रा-मुख तथा पुच्छ-विचार—ज्योतिष-ग्रन्थों के अनुसार भद्रा ३० घटी या १२ घण्टे की होती है अतः भद्रा प्रारम्भ होने की ५ घटी (२ घण्टे) भद्रा-मुख, १ घटी (२४ मिनट) गला, ११ घटी (४ घण्टे २४ मिनट) हृदय, ४ घटी (१ घण्टा ३६ मि०) नाभि, ६ घटी (२ घण्टे २४ मि०) कटि तथा ३ घटी (१ घण्टा १२ मिनट) भद्रा-पुच्छ के होते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि भद्रा किसी दिन ४ बजकर ४८ मिनट सायं से प्रारम्भ होती है, तो ४–४८ से ६–४८ तक भद्रा-मुख, ७।१२ तक गला, रात्रि ११।३६ तक हृदय, १।१२ रात्रि तक नाभि, ३।३६ रात्रि तक कटि तथा ३।३६ से ४।४८ तक भद्रा - पुच्छ होगा, परन्तु 'मुहूर्त-चिन्तामणि' के अनुसार शुक्ल पक्ष की चतुर्थी, अष्टमी, एकादशी, पूर्णिमा तथा कृष्ण पक्ष की तृतीया, सप्तमी, दशमी एवं चतुर्दशी को क्रमशः पाँचवें, दूसरे, सातवें, चौथे, आठवें, तीसरे, छठे तथा पहले प्रहर में प्रारम्भ की ५ घटी 'भद्रा-मुख' तथा उसी क्रम की तिथियों में आठवें, पहले, छठे, तीसरे, सातवें, दूसरे, पाँचवें तथा चौथे प्रहर के प्रारम्भ की तीन घटी 'भद्रा-पुच्छ' होगी। उदाहरण के लिए यदि सूर्योदय ६ बजे तथा सूर्यास्त ६ बजे हो, तो शुक्ला चतुर्थी को 'भद्रा-मुख' सूर्यास्त के पश्चात् ५ वें प्रहर में ६ से ८ बजे रात्रि तक होगा तथा आठवें प्रहर ३ बजे रात्रि से प्रातः ६ के मध्य ३ से ४।१२ तक 'भद्रा-पुच्छ' होगा।

काशी के प्रसिद्ध 'गणेश-आपा' पञ्चाङ्ग से मुझे 'भद्रा' पर यह लेख लिखने की प्रेरणा मिली। इसके पृष्ठ ३५ पर 'फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी दिन रविवार श्री सम्वत् २०४९ के आगे दिया गया है— **होलिका-दहनम् १५ भद्रा-पुच्छे रा० १२।५२ उपरि रा० २।४ या० ।"** उस दिन पूर्णिमा का प्रारम्भ

सायं ५।५७ से हो रहा है। पूर्णिमा के पूर्वार्द्ध में 'भद्रा' होती है। पञ्चाङ्ग के अनुसार 'भद्रा' सायं ५।५७ से ४।४६ बजे रात्रि तक है। अतः लेख में वर्णित 'भद्रा-पुच्छ' 'घटी-विभाग से' भद्रा की अन्तिम ३ घटी या १ घण्टा १२ मिनट पर 'भद्रा-पुच्छ' होगा अर्थात् ३।३४ बजे से ४।४६ बजे तक। इसी प्रहर-विधि से पूर्णिमा का 'भद्रा-पुच्छ' तीसरे प्रहर आरम्भ की ३ घटी होता है। तीसरा प्रहर १२ बज कर ९ मिनट दोपहर से प्रारम्भ होगा तथा 'भद्रा-पुच्छ' का समापन १ बजकर २१ मिनट दिन में होना चाहिए, परन्तु उस समय 'भद्रा' है ही नहीं। पञ्चाङ्ग - कार ने किस अज्ञात विधि से **'भद्रा - पुच्छ'** की गणना १२।५२ बजे रात्रि से २।२४ बजे रात्रि तक दिया है, मुझे तो ज्ञात नहीं है। यदि कोई ज्योतिर्विद् इस पर प्रकाश डाल सकें, तो उत्तम होगा।

इस प्रकार ज्योतिष के विभिन्न ग्रन्थों में 'भद्रा-मुख' तथा 'पुच्छ-आनयन' में मतभेद है, परन्तु मुहूर्त में 'प्रहर' का भी महत्त्व होता है। अतः मेरे विचार से 'भद्रा-मुख' तथा 'पुच्छ' का ज्ञान प्रहर तथा घटी-विभाग—दोनों द्वारा करना चाहिए।

भद्रा - लोक - निरूपण—'भद्रा' किस लोक में है, यह जानने के लिए यह देखना पड़ेगा कि चन्द्रमा किस राशि में है। यदि भद्रा के समय चन्द्रमा कुम्भ, मीन, कर्क तथा सिंह राशि में है, तो 'भद्रा-वास' मर्त्य-लोक में; यदि मेष, वृष, मिथुन तथा वृश्चिक राशि में चन्द्रमा है, तो 'भद्रा' स्वर्ग में तथा यदि चन्द्रमा कन्या, धनु, तुला तथा मकर राशि में हो, तो 'भद्रा' पाताल-लोक में होगी। 'भद्रा' जिस लोक में होती है, वहीं फल देती है। यथा यदि पूर्णिमा तिथि को पूर्वार्द्ध में चन्द्रमा मीन राशि में है, तो 'भद्रा' मर्त्य-लोक में होगी तथा उसका फल भी इसी लोक में होगा।

'वृहत्-संहिता', 'काल-निर्णय' तथा 'स्मृति-कौस्तुभ' ने **'विष्टि'** या **'भद्रा'** को कुरूप राक्षसी माना है। 'भद्रा' के देवता 'यम' हैं। यह दारुण तथा भुजङ्ग के आकार की है। इसका मुख गधे के समान है तथा इसके तीन पाँव हैं। इन्हें सूर्य-पुत्री तथा शनि की भगिनी बताया गया है।

'विष्टि' सामान्यतः नाश-कारिणी होती है। इसमें शुभ कार्य भी अशुभ कार्यों में बदल जाते हैं। इसीलिए इसे शुभ कृत्यों के लिए त्याज्य ठहराया है, किन्तु 'वृहत् - संहिता' के अनुसार इसका काल शत्रुओं के नाश एवं विष देने के लिए उपयुक्त है।

'भद्रा-शान्ति' के लिए 'विष्टि-व्रत' तथा पूजन का विधान है। 'विष्टि' यदि रात्रि में हो, तो व्रती को दो दिन, रात्रि के पूर्व तथा रात्रि के पश्चात् एक बार ही भोजन करना चाहिए। विष्टि - काल का पूजन-विधान इस प्रकार है—सङ्कल्प, कलश-स्थापन, देव एवं पितर - पूजन के पश्चात् 'विष्टि' का यथा-शक्ति पञ्चोपचार-पूजन करे। विष्टि-प्रतिमा घास से बनाए। नैवेद्य में चावल, मटर तथा मसाले से बनी खिचड़ी विहित है। काले वस्त्र, काले तिल, काली गाय तथा काले कम्बलों का दान करना चाहिए।

उक्त व्रत से शनि की शान्ति होती है, आपदाओं से रक्षा होती है, शत्रु पर विजय प्राप्त होती है तथा शरीर की विषाक्तता शान्त होती है। अमङ्गल मङ्गल में परिणत हो जाता है। विशेष विवरण के लिए 'काल-निर्णय' तथा 'स्मृति-कौस्तुभ' ग्रन्थ पठनीय हैं।

आशा है, पाठक-बन्धु 'भद्रा' के इस विवरण को पढ़कर मेरी भद्रा उतारने से बाज आएँगे तथा **'ॐ आ नो भद्राः क्रतवो वन्तु'** आदि ऋचाओं का पाठ कर अकल्याण एवं अशुभ को दूर करेंगे। **माँ भद्रा** हम सबका कल्याण करें।

बँधवा, मेजा मार्ग • **प्रयागराज (उ० प्र०)**

'चण्डी' के ५१ वें वर्ष [अप्रैल, ६२] से प्रकाशित

अभूत-पूर्व 'प्रयोग'-साहित्य

साधनमाला

[वैशाख-अङ्क (अप्रैल, ६३) से आगे]

(१०२)

श्री महा-विपरीत–प्रत्यंगिरा स्तोत्र

प्रस्तुत-कर्त्ता : **श्री भैरवानन्दनाथ, १०८ चकराघाट, सागर [म० प्र०]**

नमस्कार-मन्त्र—श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यङ्गिरा-काल्यै नमः ॥३॥

॥ पूर्व-पीठिका—श्रीमहेश्वर उवाच ॥

शृणु देवि ! महा-विद्यां, सर्व-सिद्धि-प्रदायिकां । यस्याः विज्ञान-मात्रेण, शत्रु-वर्गाः लयं गताः ॥
विपरीता महा-काली, सर्व-भूत-भयङ्करी । यस्याः प्रसङ्ग-मात्रेण, कम्पते च जगत्-त्रयम् ॥
न च शान्ति-प्रदः कोऽपि, परमेशो न चैव हि । देवताः प्रलयं यान्ति, किं पुनर्मानवादयः ॥
पठनाद्धारणाद्देवि !सृष्टि-संहारको भवेत् । अभिचारादिकाः सर्वे या या साध्य-तमाः क्रियाः ॥
स्मरणेन महा-काल्याः, नाशं जग्मुः सुरेश्वरि ! सिद्धि-विद्या महा-काली, परत्रेह च मोदते ॥
सप्त-लक्ष-महा-विद्याः, गोपिताः परमेश्वरि ! महा-काली महा-देवी, शङ्करस्येष्ट-देवता ॥
यस्याः प्रसाद-मात्रण, पर-ब्रह्म महेश्वरः । कृत्रिमादि-विषघ्ना सा, प्रलयाग्नि-निर्वर्तिका ॥
त्वद्-भक्त-दशनाद् दवि ! कम्पमानो महेश्वरः । यस्य निग्रह-मात्रेण, पृथिवी प्रलयं गता ॥
दश-विद्याः सदा ज्ञाता, दश-द्वार-समाश्रिताः । प्राची-द्वारे भुवनेशी, दक्षिणे कालिका तथा ॥
नाक्षत्रो पश्चिमे द्वारे, उत्तरे भैरवी तथा । ऐशान्यां सततं देवि ! प्रचण्ड-चण्डिका तथा ॥
आग्नेय्यां बगला-देवो, रक्षः-कोणे मतङ्गिनी ! धूमावती च वायव्ये, अध-ऊर्ध्वे च सुन्दरी ॥
सम्मुखे षोडशा देवो, सदा जाग्रत्-स्वरूपिणी । वाम-भागे च देवेशि ! महा-त्रिपुर-सुन्दरी ॥
अंश-रूपेण देवेशि ! सर्वाः देव्यः प्रतिष्ठिताः । महा-प्रत्यङ्गिरा सैव, विपरीता तथोदिता ॥
महा-विष्णुर्यथा ज्ञातो, भुवनानां महेश्वरि ! कर्ता पाता च संहर्ता, सत्यं सत्यं वदामि ते ॥
भुक्ति-मुक्ति-प्रदा देवो, महा-कालो सुनिश्चिता । वेद-शास्त्र-प्रगुप्ता सा, न दृश्या देवतैरपि ॥

अनन्त-कोटि-सूर्याभा, सर्व-शत्रु-भयङ्करी । ध्यान-ज्ञान-विहीना सा, वेदान्तामृत-वर्षिणी ।।
सर्व-मन्त्र-मयी काली, निगमागम-कारिणी । निगमागम-कारी सा, महा-प्रलय-कारिणी ।।
यस्या अङ्ग-घर्म-लवा, सा गङ्गा परमोदिता । महा-काली नगेन्द्रस्था, विपरीता महोदया ।।
यत्र-यत्र प्रत्यङ्गिरा, तत्र काली प्रतिष्ठिता । सदा स्मरण-मात्रेण, शत्रूणां निगमागमाः ।।
नाशं जग्मुः नाशमायुः, सत्यं सत्यं वदामि ते । पर-ब्रह्म महा-देवि ! पूजनैरीश्वरो भवेत् ।।
शिव-कोटि-समो योगी, विष्णु-कोटि-समः स्थिरः । सर्वैराराधिता सा वै, भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी।
गुरु-मन्त्र-शतं जप्त्वा, श्वेत-सर्षपमानयेत् । दश-दिशो विकिरेत् तान्, सर्व-शत्रु-क्षयाप्तये ।।
भक्त-रक्षां शत्रु-नाशं, सा करोति च तत्क्षणात् । ततस्तु पाठ-मात्रेण, शत्रूणां मारणं भवेत् ।।

गुरु-मन्त्र—ॐ हूं स्फारय-स्फारय, मारय-मारय, शत्रु-वर्गान् नाशय-नाशय स्वाहा ।

विनियोग—ॐ अस्य श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यङ्गिरा-स्तोत्र-माला-मन्त्रस्य श्रीमहा-काल-भैरव ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यङ्गिरा देवता, हूं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, मम श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यङ्गिरा-प्रसादात् सर्वत्र सर्वदा सर्व-विध-रक्षा-पूर्वक सर्व-शत्रूणां नाशार्थे यथोक्त-फल-प्राप्त्यर्थे वा पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—शिरसि श्रीमहा-काल-भैरव-ऋषये नमः । मुखे त्रिष्टुप् - छन्दसे नमः । हृदि श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यङ्गिरा-देवतायै नमः । गुह्ये हूं-बीजाय नमः । पादयोः ह्रीं-शक्तये नमः । नाभौ क्लीं-कीलकाय नमः । सर्वाङ्गे मम श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यङ्गिरा-प्रसादात् सर्वत्र सर्वदा सर्व-विध-रक्षा-पूर्वक सर्व - शत्रूणां नाशार्थे यथोक्त-फल-प्राप्त्यर्थे वा पाठे विनियोगाय नमः ।

	कर-न्यास	**हृदयादि-न्यास**
हूं ह्रीं क्लीं ॐ	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
हूं ह्रीं क्लीं ॐ	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
हूं ह्रीं क्लीं ॐ	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
हूं ह्रीं क्लीं ॐ	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
हूं ह्रीं क्लीं ॐ	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
हूं ह्रीं क्लीं ॐ	कर-तल-द्वयोर्नमः	अस्त्राय फट्

॥ मूल स्तोत्र-पाठ ॥

ॐ अं अं अं नमो विपरीत-प्रत्यङ्गिरायै सहस्रानेक-सूर्य-लोचनायै कोटि-विद्युज्जिह्वायै महा-व्याधिन्यै संहार-रूपायै जन्म-शान्ति-कारिण्यै । मम स-परिवारकस्य भावि-भूत-

भवच्छत्रून् स-दारापत्यान् संहारय संहारय, महा-प्रभावं दर्शय दर्शय, हिलि हिलि, मिलि मिलि, भूरि भूरि, विद्युज्जिह्वे ! ज्वल ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल, ध्वंसय ध्वंसय, प्रध्वंसय प्रध्वंसय, ग्रस ग्रस, पिब पिब, नाशय नाशय, त्रासय त्रासय, वित्रासय वित्रासय, द्रावय द्रावय, विद्रावय विद्रावय, हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा ।।२४।।

हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा । हूं ह्रीं क्लीं ॐ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे मम स - परिवारकस्य यावच्छत्रून् खड्गेन घातय घातय, त्रिशूलेन मारय मारय, विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स-दाराऽपत्यस्य भूत-भावि - भवच्छत्रून् देवता-पितृ-पिशाच-नाग-गरुड़-किन्नर-विद्याधर-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-लोक-पालान् ग्रह-भूत-नर-लोकान् स-मन्त्रान् सौषधान् सायुधान् स-सहायान् बाणैः छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि, निकृन्तय निकृन्तय, छेदय छेदय, उच्चाटय उच्चाटय, मारय मारय, तेषामहङ्कारादि-धर्मान् कीलय कीलय, घातय घातय, नाशय नाशय, विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! स्फ्रें फेत्कारिणि ! ॐ अं जः ७, ॐ अं ठः ७ मम स-परिवारकस्य शत्रूणां सर्वाः विद्याः स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, शिरांसि स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, मुखान् स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, नेत्राणि स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, दन्तान् स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, जिह्वां स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, कण्ठान् स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, हृदयान् स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, हस्तान् स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, पादान् स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, गुह्यं स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, कुटुम्बान् स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, वृत्ति स्तम्भय स्तम्भय, नाशय नाशय, स्थानं कीलय कीलय, नाशय नाशय, प्राणान् कीलय कीलय, नाशय नाशय, ॐ अं जः ७, ॐ अं ठः ७, हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा मम स-परिवारकस्य सर्वतो रक्षां कुरु कुरु, ॐ हु फट् स्वाहा ।।२५।।

हूं ह्रीं क्लीं ॐ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य भूत-भावि-भवच्छत्रूणां उच्चाटनं कुरु कुरु, हूं हूं, फट् फट् स्वाहा, ह्रीं-५ वं-५ लं-५ रं-५ यं-५ ॐ-५ नमो भगवति, विपरीत-प्रत्यङ्गिरे, दुष्ट - चाण्डालिनि, त्रिशूल-वज्रांकुश-शक्ति-शूल-खड्ग-धनुः-शर-पाश-धारिणि, शत्रु-रुधिर-चर्म-मेदो-मांसास्थि-मज्जा-शुक्र-मेहन-वसा-वाक्-प्राण - मस्तकादि-भक्षिणि, पर-ब्रह्म-शिवे, ज्वाला - दायिनि, ज्वाला - मालिनि, शत्रूच्चाटन-मारण-क्षोभण-स्तम्भन-मोहन-द्रावण-जृम्भण-भ्रामण-रौद्रण-सन्तापन-यन्त्र-मन्त्र-तन्त्रान्तर्याग-पुरश्चरण-भूत-शुद्धि-पूजा-फल-परम-निर्वाण-हरण-कारिणि, कपाल-खट्वाङ्ग-वराऽसि-धारिणि ! मम स-

परिवारकस्य भूत-भावि-भवच्छत्रून् स-सहायान् सायुधान् स-वाहनान् हन हन, रण रण, दह दह, दल दल, दम दम, धम धम, पच पच, मथ मथ, लङ्घय लङ्घय, खादय खादय, चर्वय चर्वय, व्यथय व्यथय, ज्वरय ज्वरय, मूकान् कुरु कुरु, ज्ञानं हर हर, ह्रौं-५ वं-५ लं-५ रं-५ यं-५ ॐ-५ हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।।२६।।

ह्रीं-७ हूं-७ क्लीं-७ विपरीत - प्रत्यङ्गिरे ! ह्रीं-७ हूं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा । मम स-परिवारकस्य कृते मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र-हवन-कृत्यौषधि-विष-चूर्ण-शस्त्राद्यभिचार-सर्वोपद्रवादिकं येन कृतं, कारितं, कुरुते, कारयते, करिष्यति कारयिष्यति वा तान् सर्वान् हन हन, स्फारय स्फारय, मारय मारय, विपरीत - प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य सर्वतो रक्षां कुरु कुरु, ह्रीं-७ हूं-७ क्लीं-७ विपरीत - प्रत्यङ्गिरे ! ह्रीं-७ हूं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा ।।२७।।

हूं ह्रीं क्लीं ॐ विपरीत - प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य शत्रवः कुर्वन्ति, करिष्यन्ति, चक्रुश्च, कारयामासुः, कारयन्ति, कारयिष्यन्ति यान् यान् कृत्यान् तैः सार्द्धं तान् तान् विपरीतान् कुरु कुरु, नाशय नाशय, मारय मारय, श्मशानस्थान् कुरु कुरु, भावि-भूत-भवच्छत्रूणां यावत् कृत्यादिकां क्रियां विपरीतां कुरु कुरु, तान् डाकिनी-मुखे हारय हारय, भीषय भीषय, त्रासय त्रासय, मारय मारय, परम-शमन-रूपेण हन हन, धर्म-विच्छिन्न-निर्वाणं हर हर, तेषां इष्ट-देवान् नाशय नाशय, क्षोभय क्षोभय, हारय हारय, प्राणादि-मनो-बुद्ध्यहङ्कार-क्षुत्-तृष्णा-कर्षण-लयन-श्रवण-आवागमन-भरणादिकं नाशय नाशय, हूं ह्रीं क्लीं ॐ फट् फट् स्वाहा ।।२८।।

क्षं ळं हं सं षं शं । वं लं रं यं । मं भं बं फं पं । नं धं दं थं तं । णं ढं डं ठं टं । ञं झं जं छं चं । ङं घं गं खं कं । अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं । हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ फट् फट् स्वाहा क्षं ळं हं सं षं शं । वं लं रं यं । मं भं बं फं पं । नं धं दं थं तं । णं ढं डं ठं टं । ञं झं जं छं चं । ङं घं गं खं कं । अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ।।२९

अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं । ङं घं गं खं कं । ञं झं जं छं चं । णं ढं डं ठं टं । नं धं दं थं तं । मं भं बं फं पं । वं लं रं यं । क्षं ळं हं सं षं शं । ॐ-७ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! ॐ-७ फट् फट् स्वाहा । अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं । ङं घं गं खं कं । ञं झं जं छं चं । णं ढं डं ठं टं । नं धं दं थं तं । मं भं बं फं पं । वं लं रं यं । क्षं ळं हं सं षं शं । ॐ-७ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स-

परिवारकस्य स्थाने मम शत्रूणां कृत्यान् सर्वान् विपरीतान् कुरु कुरु भस्मी-कुरु कुरु, तेषां मन्त्र-यन्त्र-तन्त्रार्चन-श्मशानारोहण-भूमि-स्थापन-भस्म-प्रक्षेपण-पुरश्चरण-होम-तर्पणाभिषेकादिकान् कृत्यान् दूरी कुरु कुरु, नाशं कुरु कुरु, हूं विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मां स-परिवारकं सर्वतः सर्वेभ्यो रक्ष रक्ष हूं ह्रीं फट् स्वाहा ।।३०।।

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः । कं खं गं घं ङं । चं छं जं झं ञं । टं ठं डं ढं णं । तं थं दं धं नं । पं फं बं भं मं । यं रं लं वं । शं षं सं हं ळं क्षं । क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ-७ हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ विपरीत - प्रत्यङ्गिरे ! हूं-७ ह्रीं-७ क्लीं-७ ॐ-७ क्लीं ह्रीं श्रीं ॐ-७, अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः । कं खं गं घं ङं । चं छं जं झं ञं । टं ठं डं ढं णं । तं थं दं धं नं । पं फं बं भं मं । यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं । विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य शत्रूणां विपरीतादि-क्रियां नाशय नाशय, त्रुटिं कुरु कुरु, तेषां इष्ट-देवादि-विनाशं कुरु कुरु, सिद्धि अपनयापनय, विपरीत-प्रत्यङ्गिरे, शत्रु - मर्दिनि ! शत्रूणां भयङ्करि ! नाना - कृत्यादि - मर्दिनि, ज्वालिनि, महा-घोर-तरे, त्रिभुवन-भयङ्करि शत्रूणां चक्षुः-श्रोत्रादि-हारिणि ! मम स-परिवारकस्य सर्वतः सर्वेभ्यः सर्वदा रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ।।३१।।

श्रीं ह्रीं ऐं ॐ धरणि ! मम स-परिवारकस्य भूमिं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।३२ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ महा-लक्ष्मि ! मम स-परिवारकस्य पादौ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।३३ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ चण्डिके ! मम स-परिवारकस्य जङ्घे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।३४ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ चामुण्डे ! मम स-परिवारकस्य गुह्यं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।३५ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ऐन्द्रि ! मम स-परिवारकस्य नाभिं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।३६ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ नारसिंहि ! मम स-परिवारकस्य बाहू रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।३७ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ वाराहि ! मम स-परिवारकस्य हृदयं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।३८ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ वैष्णवि ! मम स-परिवारकस्य कण्ठं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।३९ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ कौमारि ! मम स-परिवारकस्य वक्त्रं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।४० श्रीं ह्रीं ऐं ॐ माहेश्वरि ! मम स-परिवारकस्य नेत्रे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।४१ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ब्राह्मि ! मम सपरिवारकस्य शिरो रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।४२ श्रीं ह्रीं ऐं ॐ विपरीत-प्रत्यङ्गिरे ! मम स-परिवारकस्य स-छिद्रं सर्व-गात्राणि रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ।।४३।।

ॐ सन्तापिनि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स-परिवारकस्य शत्रु - सङ्घं सन्तापय सन्तापय हूं फट् स्वाहा ।।४४ ॐ संहारिणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स-परिवारकस्य शत्रु-सङ्घं संहारय संहा-

रय हूं फट् स्वाहा ।।४५ ॐ रौद्रि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स-परिवारकस्य शत्रु-सङ्घं रौद्रय रौद्रय हूं फट् स्वाहा ।।४६ ॐ भ्रामिणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रु - सङ्घं भ्रामय भ्रामय हूं फट् स्वाहा ।।४७ ॐ जृम्भिणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स-परिवारकस्य शत्रु-सङ्घं जृम्भय जृम्भय हूं फट् स्वाहा ।।४८ ॐ द्राविणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रु-सङ्घं द्रावय द्रावय हूं फट् स्वाहा ।।४९ ॐ क्षोभिणि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स - परिवारकस्य शत्रु-सङ्घं क्षोभय क्षोभय हूं फट् स्वाहा ।।५० ॐ मोहिनि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स-परिवारकस्य शत्रु-सङ्घं मोहय मोहय हूं फट् स्वाहा ।।५१ ॐ स्तम्भिनि ! स्फ्रें स्फ्रें मम स-परिवारकस्य शत्रु-सङ्घं स्तम्भय स्तम्भय हूं फट् स्वाहा ।।५२।।

।। फल-श्रुति ।।

धृणोति य इमां विद्यां, शृणोति च सदाऽपि ताम् । यावत् कृत्यादि-शत्रूणां, तत्क्षणादेव नश्यति।
मारणं शत्रु - वर्गाणां, रक्षणं चात्मनः परम् । आयुर्वृद्धिर्यशो-वृद्धिस्तेजो-वृद्धिस्तथैव च ।।
कुबेर इव वित्ताढ्यः, सर्व-सिद्धिमवाप्नुयात् । वाय्वादीनामुपशमं, भूत-ज्वर-विनाशनम् ।।
पर-विद्या-हरा सा वै, पर-प्राण-हरा तथा । पर-क्षोभादिक-करा, सर्व-सम्पत्-करा शुभा ।।
स्मृति-मात्रेण देवेशि ! शत्रु - वर्गाः लयं गताः । इदं सत्यमिदं सत्यं, दुर्लभा देवतैरपि ।।
शठाय पर-शिष्याय, न प्रकाश्या कदाचन । पुत्राय भक्ति-युक्ताय, स्व-शिष्याय तपस्विने ।।
प्रदातव्या महा-विद्या, चात्म-वर्गाय दापयेत् । विना ध्यानैर्विना जापैर्विना पूजा-विधानतः ।।
विना षोढा विना ज्ञानैर्मोक्ष-सिद्धिः प्रजायते । पर-नारी-हरा विद्या, पर-रूप-हरा तथा ।।
वायु-चन्द्र-स्तम्भ-करा, मैथुनानन्द-दायिनी । त्रि-सन्ध्यमेक-सन्ध्यं वा, यः पठेद्भक्तितः सदा ।।
सत्यं वदामि देवेशि ! मम कोटि-समं भवेत् । क्रोधाद्देव-गणास्सर्वे, लयं यास्यन्ति निश्चितम् ।।
किं पुनर्मानवा देवि ! भूत-प्रेतादयो मृताः । विपरीता-समा विद्या, न भूता न भविष्यति ।।
पठनान्ते पर-ब्रह्म-विद्यां स-भास्करां तथा । मातृका-पुटितां कृत्वा, दशधा प्रजपेत् सुधीः ।।
वेदादि-पुटिता देवि ! मातृकाऽनन्त-रूपिणी । तया हि पुटितां विद्यां, प्रजपेत् साधकोत्तमः ।।

पर-ब्रह्म-विद्या—ॐ-७ अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अः । कँ खँ गँ घँ ङँ । चँ छँ जँ झँ ञँ । टँ ठँ डँ ढँ णँ । तँ थँ दँ धँ नँ । पँ फँ बँ भँ मँ । यँ रँ लँ वँ । शँ षँ सँ हँ ळँ क्षँ । ॐ-७ विपरीत-पर-ब्रह्म-महा-प्रत्यङ्गिरे ! ॐ-७, अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ ॡँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अः । कँ खँ गँ घँ ङँ । चँ छँ जँ झँ ञँ । टँ ठँ डँ ढँ णँ । तँ थँ दँ धँ नँ । पँ फँ बँ भँ मँ । यँ रँ लँ वँ । शँ षँ सँ हँ ळँ क्षँ ॐ-७ । (१० वारं जपेत्) ।।६६ से ७५।।

प्रार्थना—ॐ विपरीत-पर-ब्रह्म-महा-प्रत्यङ्गिरे ! स-परिवारकस्य सर्वेभ्यः सर्वतः सर्वदा रक्षां कुरु कुरु, मरण-भयमपनयापनय, त्रि-जगतां बल-रूप-वित्तायुर्मे स-परिवारकस्य देहि देहि, दापय दापय, साधकत्वं प्रभुत्वं च सततं देहि देहि, विश्व-रूपे ! धनं पुत्रान् देहि देहि, मां स-परिवारकं, मां पश्यन्तु । देहिनः सर्वे हिंसकाः हि प्रलयं यान्तु, मम स-परिवारकस्य यावच्छत्रूणां बल-बुद्धि-हानिं कुरु कुरु, तान् स - सहायान् सेष्ट - देवान् संहारय संहारय, तेषां मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र-लोकान् प्राणान् हर हर, हारय हारय, स्वाभिचारमपनयापनय, ब्रह्मास्त्रादीनि नाशय नाशय, हूं हूं स्फ्रें स्फ्रें ठः ठः ठः फट् फट् स्वाहा ।

।। इति श्रीमहा-विपरीत-प्रत्यङ्गिरा-स्तोत्रम् ।।

विशेष ज्ञातव्य—वैसे तो शास्त्रों में प्रायः सभी महा-विद्याओं और अन्य भी देवताओं के **'विपरीत-प्रत्यङ्गिरा मन्त्र-स्तोत्रादि'** मिलते हैं, किन्तु यह स्तोत्र उन सबकी चरम सीमा है । इसकी **'पूर्व-पीठिका'** और **'फल-श्रुति'** में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है । केवल करने की सामर्थ्य भर हो । किसी भी प्रकार का **अभिचार, रोग, ग्रह-पीड़ा, देव-पीड़ा, दुर्भाग्य, शत्रु या राज-भय** आदि क्या है ऐसा, जिसका शमन इससे नहीं हो सकता ! आजकल कुछ ढोंगी तान्त्रिक अपने को कृत्या-सिद्ध बताकर लोगों को आतङ्कित कर रहे हैं, उनके लिए यह ऐसा उत्तर है, जिसका कोई प्रत्युत्तर नहीं है । इसके साधक को **'कृत्या'** देख भी नहीं सकती, अहित।कर पाना तो आकाश-कुसुम है । अब पाठ करने सम्बन्धी बातों पर ध्यान दें—

१. **'पूर्व-पीठिका'** के तेईस श्लोकों का पाठ करके, दस दाने सफेद सरसों (इसे ही पीली सरसों भी कहते हैं । अन्य नाम हैं—सिद्धार्थ, राई, राजिका आदि । इनके आगे 'श्वेत या सफेद' विशेषण लगा दें ।) लेकर गुरु-मन्त्र से १०० बार (१०८बार नहीं) अभिमन्त्रित कर दशों दिशाओं में दस-दस दाना फेंक दें । फिर विनियोगादि आगे की क्रिया करके पाठ करें ।

आप चाहें, तो सरसों के दाने अधिक भी ले सकते हैं, किन्तु सभी दिशाओं में एक-सी संख्या में ही दाने फेंकने होंगे, जो उत्तम पक्ष है । कमी-बेशी ठीक नहीं ।

(२) बीजों या पदों को उनके आगे दी गई संख्या में पढ़ें । यथा— "ॐ-७ = ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ" । इसीप्रकार कुछ ऐसे पद हैं, जिन्हें पूरा ही निर्दिष्ट संख्या में पढ़ना है । यथा—**'ॐ अँ जः-७ = ॐ अँ जः, ॐ अँ जः, ॐ अँ जः, ॐ अँ जः, ॐ अँ जः, ॐ अँ जः, ॐ अँ जः** । ऐसा ही सर्वत्र ध्यान रखें ।

(३) **फल-श्रुति** के अन्त में **'पर-ब्रह्म-विद्या'** का १० बार जप करें । यदि अधिक संख्या में पाठ करें, तो **'पर-ब्रह्म-विद्या'** का जप केवल प्रथम और अन्तिम पाठ में करें । बीच के पाठों में मात्र **'स्तोत्र'** का पाठ होगा । और भी स्पष्ट कर दूँ— पहला पाठ पूरा होगा । बीच के पाठों में केवल **'स्तोत्र'** पढ़ें तथा अन्तिम पाठ में **'फल-श्रुति'**, **'पर-ब्रह्म-विद्या'** का जप तथा **'प्रार्थना'** सभी सम्मिलित होंगे ।

(४) पुरश्चरण आवश्यक नहीं किन्तु सर्वोत्तम होगा कि विधि-पूर्वक एक सहस्र पाठ कर लिए जाएँ । **प्रयोग** के लिए १०० **पाठ** पर्याप्त हैं, यदि आवश्यक हो तो अधिक करें ।

(५) पुरश्चरण और 'प्रयोग'-काल में नित्य **शिवा-बलि** अवश्य दें । **कौल-साधक** तत्त्वों से तथा **पाशव-कल्प** के साधक अनुकल्पों से बलि दें ।

भूत-शुद्धि की रीतियाँ

प्रस्तुत-कर्त्ता : पं० तापेश्वरीप्रताप मिश्र, १७५ मु० राजा उतरौला मार्ग, गोण्डा [उ० प्र०]

'भूत-शुद्धि' की चार विधियाँ प्रचलित हैं। यथा—

प्रथम रीति—पहले सङ्कल्प करे : ॐ **अद्येत्यादि''........''देव-पूजाद्यधिकार-सिद्धये भूत-शुद्ध्याद्यहं करिष्ये''**। अब निम्न प्रकार हृदय में भावना करे—

(१) अपने शरीर में पैरों से घुटनों तक '**पृथ्वी - तत्त्व**' व्याप्त है। उसका स्वरूप '**चतु-रस्र**' (चौकोर) '**वज्र**' चिह्न से युक्त और '**पीत**' वर्ण है। उसके मध्य में '**लं**' बीज है। (२) घुटनों से नाभि तक '**जल-तत्त्व**' है। उसका स्वरूप **अर्ध-चन्द्राकार**' और '**शुक्ल**' वर्ण है। '**कमल**' चिह्न और '**वं**' बीज अङ्कित हैं। (३) नाभि से कण्ठ तक '**अग्नि-तत्त्व**' '**त्रिकोण**' रूप में है, जो '**स्वस्तिक**'-चिह्न से युक्त 'रक्त-वर्ण' है। उसमें 'रं' बीज अङ्कित है। (४) कण्ठ से ऊपर भ्रू-मध्य तक '**वायु - तत्त्व**' है, जिसका स्वरूप '**षट् - कोण**' वर्ण '**काला**' है। छः विन्दुओं से युक्त है तथा उसमें 'यं' बीज अङ्कित है। (५) भ्रू - मध्य से ब्रह्म-रन्ध्र तक '**आकाश-तत्त्व**' है। उसका स्वरूप '**वृत्त**' (गोल) और वर्ण '**धूम्र**' है। '**ध्वज**' का चिह्न और '**हं**' बीज अङ्कित है।

उक्त '**पञ्च-तत्त्व**' ही ''**पञ्च-भूत**' कहे जाते हैं। इन्हें क्रमशः भावना द्वारा 'लय' करना चाहिए। यथा—पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में तथा आकाश को अव्यक्त '**प्रकृति**' में विलीन करे। 'प्रकृति' ही अपर ब्रह्म अथवा माया कहलाती है। इस माया को '**परमात्मा**' में लय करे। इस प्रकार भावना द्वारा देहादि समस्त प्रपञ्च को परमात्मा में लय कर कुछ क्षण तक परमात्मा-रूप से स्थित रहे अर्थात् ध्यान द्वारा यह देखे कि '**मैं परमात्मा से मिलकर उनसे अभिन्न हो गया हूँ।**' फिर भावना द्वारा अपने परम पवित्र शरीर की सृष्टि करे। परमात्मा द्वारा शब्द-ब्रह्मा-त्मिका 'माया' प्रकट होती है। यही 'माया' जगन्माता परा प्रकृति है! इस जगन्माता से 'आकाश' उत्पन्न हुआ। 'आकाश' से 'वायु', 'वायु' से 'अग्नि', 'अग्नि' से 'जल' और 'जल' से 'पृथिवी' प्रकट हुई। इन्हीं विशुद्ध भूतों से अपना यह तेजो-मय शरीर निर्मित हुआ है, जो परम पवित्र होने के कारण आराध्य देव की आराधना के लिए सर्वथा उप-युक्त है। इस शरीर में सर्वज्ञ सर्व-शक्ति-मान् समस्त देवता-रूप, सम्पूर्ण मन्त्र - मय एवं

कल्याण-मय परमात्मा ही आत्मा कारण-रूप से विराजमान है। इस प्रकार की भावना ही **'भूत-शुद्धि'** है।

द्वितीय रीति—साधक यह भावना करे कि मेरा हृदय एक प्रफुल्ल कमल है, जो प्रणव (ॐ) के द्वारा विकसित हुआ है। 'धर्म' इस हृदय-कमल का मूल और 'ज्ञान' इसकी नाल है। 'अणिमा' आदि आठ ऐश्वर्य इसके आठ दल हैं। 'वैराग्य' इसकी कर्णिका है। इस कर्णिका में 'जीवात्मा' विराजमान है, जिसकी आकृति दीपक की ज्योति के समान है। इस जीवात्मा को साधक 'सुषुम्णा' के मार्ग से ब्रह्म-रन्ध्र तक ले जाय और उसे 'परमात्मा' में मिला दे। परमात्मा को अपने से अभिन्न देखता हुआ साधक **'सोऽहम्'** मन्त्र का चिन्तन करे। फिर भावना द्वारा 'पृथिवी' आदि पञ्च-तत्त्वों को भी परमात्मा में लीन कर दे। अब पूर्व-जन्मों के पापों की कल्पना एक 'पुरुष' के रूप में करे। 'ब्रह्म-हत्या' उस पाप-पुरुष का मस्तक है। 'सुवर्ण की चोरी' उसकी दो भुजाएँ हैं। 'सुरा-पान'-रूपी हृदय से वह युक्त है। 'गुरु-पत्नी-गमन' उसके दो कटि-भाग हैं। इन पापियों व पापों का 'संसर्ग' उसके दो चरण हैं। 'उप-पातक' उसके रोएँ हैं। उसकी मूँछ, दाढ़ी के बाल और नेत्र लाल हैं। उसके शरीर का रङ्ग काला है और हाथों में ढाल-तलवार लिए है। ऐसा **'पाप-मय पुरुष'** अपनी दाहनी कुक्षि (कोख) के भीतर स्थित है।

पूरक, रेचक और कुम्भक प्राणायाम के द्वारा क्रमशः प्राण-वायु को रोकते हुए **'यं'** वायु-बीज द्वारा उक्त **'पाप-पुरुष'** के शरीर को सुखा कर, अग्नि-बीज **'रं'** के द्वारा उसके शुष्क शरीर को भस्म कर डाले और उस भस्म को नासिका-मार्ग से बाहर निकाल दे।

तदनन्तर अमृत-बीज **'वं'** से अपने आपको आप्लावित कर यह भावना करे कि उस दिव्य अमृत-जल में स्नान कर उसका शरीर निर्मल एवं देवोपासना के योग्य बन गया है। परमात्मा में लीन हुए पृथिवी आदि तत्त्वों को पुनः अपने-अपने स्थान पर पहुँचा दे और जीवात्मा को परमात्मा से पृथक् कर **'हंसः'** मन्त्र का जप करते हुए उसे हृदय-कमल पर ले आए। यह **'भूत-शुद्धि'** की दूसरी विधि हुई।

तृतीय रीति—प्रथम रीति से पञ्च-महा-भूतों का स्मरण कर **'यं'** बीज का १६ बार, **'रं'** बीज का ६४ बार, पुनः **'यं'** बीज का ३२ बार, **'वं'** बीज का १६ बार और **'लं'** बीज का भी १६ बार जप करे।

चतुर्थ रीति—(१) ॐ **भूत-शृङ्गाटाच्छिरः सुषुम्ना-पथेन जीव-शिवं परम-शिव-पदे योजयामि स्वाहा । (२) ॐ यं लिङ्ग-शरीरं शोषय स्वाहा । (३) ॐ रं सङ्कोच-शरीरं दह दह स्वाहा । (४) ॐ परम-शिव सुषुम्ना-पथेन मूल-शृङ्गाटमुल्लसोल्लसज्ज्वल ज्वल प्रज्वल सोऽहं हंसः स्वाहा ।**

उक्त चार मन्त्रों का जप नियमित रूप से करे, तो **'भूत-शुद्धि'** सम्पन्न हो जाता है । ६ महीने तक इन मन्त्रों के अर्थ एवं भाव समझ कर जप करे ।

पञ्चम रीति—प्रथम रीति की भाँति पृथिवी-मण्डल का स्मरण करे, जिसमें पाद-इन्द्रिय, चलने की क्रिया, गन्तव्य-स्थान, गन्ध, घ्राण, पृथिवी, ब्रह्मा, निवृत्ति-कला एवं समान वायु का निवास है । इनका स्मरण करके **'ॐ ह्लां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति-कलात्मने हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुण्डलिनी के द्वारा उन्हें जल-स्थान में विलीन कर दे ।

फिर जल-मण्डल का स्मरण करे, जिसमें हस्त-इन्द्रिय, दान क्रिया, दातव्य रस, रसनेन्द्रिय, जल, विष्णु, प्रतिष्ठा कला और उदान वायु निवास करते हैं । इनका स्मरण करके **'ॐ ह्लीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठा-कलात्मने हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुण्डलिनी के द्वारा इन सबको अग्नि-स्थान में विलीन कर दे ।

तब अग्नि-मण्डल का स्मरण करे, जिसमें पायु इन्द्रिय, विसर्ग क्रिया, विसर्जनीय रूप, चक्षु, तेज, रुद्र, विद्या-कला एवं व्यान वायु का निवास है । इनका स्मरण करके **'ॐ ह्लूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्या-कलात्मने हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र का उच्चारण कर कुण्ड-लिनी के द्वारा इन सबको वायु-मण्डल में विलीन कर दे ।

फिर वायु-मण्डल का स्मरण करे, जिसमें उपस्थ इन्द्रिय, आनन्द क्रिया, उस इन्द्रिय का विषय, स्पर्श, स्पर्श का विषय और वायु, ईशान, शान्ति - कला एवं अपान वायु का निवास है । उनका स्मरण करके **'ॐ ह्लैं ईशानाय वाय्वधिपतये शान्ति-कलात्मने स्वाहा'** मन्त्र का उच्चारण करके इन सबको आकाश-मण्डल में कुण्डलिनी के द्वारा विलीन कर दे ।

तब आकाश-मण्डल का चिन्तन करे, जिसमें वाग् इन्द्रिय, वचन क्रिया, वक्तव्य, शब्द, श्रोत्र, आकाश, सदा - शिव, शान्त्यतीत कला और प्राण-वायु का निवास है । उनका स्मरण करके **'ॐ ह्लौं सदा-शिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीत-कलात्मने हुं फट् स्वाहा'** मन्त्र का उच्चारण करके उन सबको कुण्डलिनी के द्वारा अहङ्कार में विलीन कर

दे। अहङ्कार को महत्-तत्त्व में और महत् - तत्त्व को शब्द - ब्रह्म - रूपा हृदय शब्द के सूक्ष्मतम अर्थ **'प्रकृति'** में विलीन कर दे। **'प्रकृति'** को नित्य-शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव, स्वयं-प्रकाश, सत्य-ज्ञान, अनन्तानन्त-स्वरूप, परम-कारण, ज्योतिः-स्वरूप पर - ब्रह्म **'परमात्मा'** में विलीन कर दे।

(१०४)

ग्रह, आर्थिक, विवाह-बाधा-निवारण प्रयोग

[१] सिन्दूर लगे हनुमान जी की मूर्त्ति का सिन्दूर लेकर सीता जी के चरणों में लगाएँ। फिर माता सीता से एक श्वास में अपनी कामना निवेदित कर भक्ति-पूर्वक प्रणाम कर वापस आ जाएँ। इस प्रकार कुछ दिन करने पर सभी प्रकार की बाधाओं का निवारण होता है एवं कामना-पूर्त्ति होती है।

[२] किसी शनिवार को, यदि उस दिन 'सर्वार्थ—सिद्धि योग' हो, तो और भी उत्तम, सायं-काल अपनी लम्बाई के बराबर लाल रेशमी सूत नाप ले। फिर एक पत्ता बरगद का तोड़े। उसे स्वच्छ जल से धो-कर पोंछ लें। तब पत्ते पर अपनी कामना-रूपी नापा हुआ लाल रेशमी सूत लपेट दें और पत्ते को बहते हुए जल में प्रवाहित कर दें। इस प्रयोग से सभी प्रकार की बाधाएँ दूर होती हैं और कामनाओं की पूर्त्ति होती है।

[३] रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र में, एक कौआ या काला कुत्ता पकड़े। उसके दाएँ पैर का नाखून काटें। इस नाखून को ताबीज में भर कर, धूप-दीपादि से पूजन कर, धारण करें। इससे आर्थिक बाधा दूर होती है। नौकरी, साक्षात्कार आदि में सफलता की प्राप्ति होती है। कौए या काले कुत्ते दोनों में से किसी एक का नाखून लें। दोनों का एक साथ प्रयोग न करें।

[४] प्रत्येक प्रकार के सङ्कट निवारण के लिए भ० गणेश की मूर्त्ति पर कम-से-कम २१ दिन तक थोड़ी-थोड़ी जावित्री चढ़ावे और रात को सोते समय थोड़ी जावित्री खाकर सोवे। यह प्रयोग २१ दिनों तक अवश्य करे अथवा ४२, ६३ या ८४ दिनों तक करे।

—पं० कपिलनारायण मिश्र, भोजपुर (बिहार)

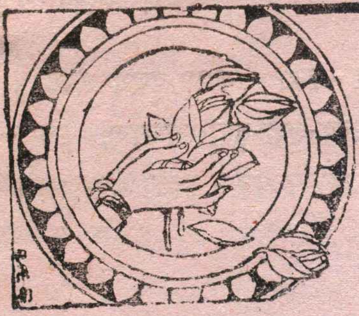

भगवान पराशुराम जयन्ती (अक्षय तृतीया) के पुनीत अवसर पर

भगवान् परशुराम और रेणुका-उत्सव

• डा० वेणीप्रसाद शर्मा, चण्डीगढ़

'चण्डीगढ़' से लगभग चालीस किलो - मीटर की दूरी पर **'शिवालक'** (शिव-अलक—शिव-जटाएँ) की तीन-चार हजार फोट ऊँची पर्वतीय उपत्यकाओं में **'नाहण'** - (भूतपूर्व 'सिरमौर' रियासत की राजधानी) के समीप विशाल **'रेणुका झील'** है। प्रकृति की गोद में यह सुन्दर रमणीक पर्वतीय स्थली देशी-विदेशी यात्रियों का सुन्दर पर्यटन-केन्द्र है। हिमाचल सरकार ने यात्रियों की सुविधा के लिए इस स्थली को और भी आकर्षक रूप दिया है। ठहरने के लिए यहाँ की प्राकृतिक छटा के अनुरूप मन-मोहक आवासीय कुटियों का निर्माण भी हुआ है।

यात्री लोग **'रेणुका - झील'** के सान्निध्य में पहुँच कर प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य का आनन्द लेते हुए आध्यात्मिक अनुभूति में डुबकियाँ लेने लगते हैं क्योंकि परम सत्ता से प्राकृतिक छटा का सतत सम्बन्ध चला आया है। भगवान् परशुराम का भव्य मन्दिर यहीं है।

देवी रेणुका भगवान् परशुराम की माता होने से सर्व-पूजनीया हैं। उनकी स्मृति में दीपावली के बाद शुक्लपक्ष की दशमी से पूर्णिमा तक 'रेणुका झील' के किनारे एक सप्ताह का उत्सव सदियों से परम्परागत यहाँ मनाया जाता है। इस मेले में पहाड़ी गाँवों की सरल-चित्त, सीधी - सादी जनता की प्रसन्नता एवं धार्मिक उत्साह की कोई सीमा नहीं आँकी जा सकती। सात दिनों तक माता रेणुका और उनके ज्येष्ठ अवतारी पुत्र परशुराम के प्रति लोगों का श्रद्धा - विश्वास प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में अनुभव करने की बात है, शब्दों में उसका यथार्थ वर्णन सम्भव नहीं। सातों दिन अनेक भजन - मण्डलियों का कीर्तन चलता रहता है।

बाल्यावस्था में चण्डीगढ़ के समीप अपनी जन्म-भूमि **'बरवाला'** गाँव से चरमराती बैलगाड़ियों के द्वारा रातों - रात १२-१३ कोस का कच्चा रास्ता पार कर हम उक्त मेले में पहुँचते थे। **'रेणुका-उत्सव'** का आध्यात्मिक आकर्षण एवं महत्त्व होने के कारण आजकल यह उत्सव हिमाचल सरकार द्वारा राजकीय स्तर पर बड़ी धूम - धाम से प्रति वर्ष मनाया जाता है। इस मेले का धार्मिक महत्त्व रहने के साथ-साथ सिरमौरी प्रदेश की जनता का सामाजिक चरित्र, वेष-भूषा एवं रहन-सहन की एक अनोखी झलक भी प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देती है। परस्पर सामाजिक मेल-जोल, सद्भावना एवं आपसी सम्बन्ध जोड़ने का लोगों को यहाँ अच्छा अवसर मिलता है।

'रेणुका-उत्सव' में भगवान् परशुराम की स्तुति में भजन गाती हुई भजन - मण्डलियाँ चलती हैं। आस-पास के गाँवों से दशमी तिथि को पुष्प-मालाओं से अलंकृत भगवान् परशुराम की प्रतिमा से सुशोभित अनेक पालकियों को जुलूस के रूप में कन्धों पर उठाए लोग **'रेणुका - झील'** के नीचे एक नदी के किनारे एकत्रित होते हैं। प्रत्येक पालकी के आगे बैण्ड-बाजा, ढोल एवं नरसिङ्घे बजाता हुआ

नाचता-गाता जन-समूह धार्मिक वातावरण में अलमस्त दीख पड़ता है । यहाँ से सब पालकियाँ **'रेणुका-झील'** पर पहुँच कर प्रतिमाओं को झील में स्नान करवाकर किनारे पर निर्मित भव्य **'भगवान् परशुराम मन्दिर'** में स्थापित कर दी जाती हैं । दशमी तिथि से पूर्णिमा तक निरन्तर भजन - कीर्तन चलता रहता है और मेले में खूब रौनक रहती है । आस-पास की ग्रामीण जनता द्वारा अपनी उपज का क्रय-विक्रय भी चलता रहता है । यह मेला एक परम्परागत दन्त-कथा से जुड़ा हुआ है, जो निम्न प्रकार है—

राजा रेणु की कन्या रेणुका का शुभ विवाह इस प्रदेश में **'तप का टीला'** नामक पहाड़ी के आश्रम-वासी महर्षि जमदग्नि से हुआ था । छोटी बहन नेनुका का विवाह अर्जुन नामक क्षत्रिय राजा से हुआ था । एक बार रेणुका ने अपनी छोटी बहन और बहनोई को एक विशेष पर्व पर अपने 'तप का टीला' आश्रम पर आमन्त्रित किया । रेणुका के अनुपम सौन्दर्य को देखकर अर्जुन चकित रह गया । साथ ही महर्षि जमदग्नि के आश्रम को देवराज इन्द्र द्वारा दान में दी गई 'काम-धेनु' को भी वह हथियाना चाहता था । महर्षि ने गौ देने से इनकार किया, तो वह क्रोधित हो उठा और उसने महर्षि की हत्या कर दी । इस समय महर्षि के ज्येष्ठ पुत्र परशुराम गढ़वाल प्रदेश में महेन्द्र पर्वत पर तपस्या कर रहे थे । राजा अर्जुन ने रूपवती रेणुका का शील - भङ्ग करने का प्रयत्न किया, तो उसने आश्रम के नीचे **'राम-सरोवर'** में छलाँग लगाकर अपने सतीत्व की रक्षा की । इसी समय से **'राम - सरोवर'** का नाम **'रेणुका-झील'** प्रचलित हुआ ।

हत्यारा अर्जुन वापस अपने स्थान चला गया । **'रेणुका'** कहीं सरोवर के दूर किनारे पर बाहर निकली और इस विपत्ति-काल में उसने अपने पुत्र **'परशुराम'** का स्मरण किया । परशुराम तपोबल से आत्म-ज्ञान द्वारा तत्काल विपद्-ग्रस्ता माता के चरणों में आ पहुँचे । माता की विपद्-गाथा सुन कर उन्होंने राजा अर्जुन को सपरिवार मार डाला और उसके राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर उजाड़ दिया ।

अपने पिता को तपोबल से भगवान् परशुराम ने जीवित कर दिया और पुनः तपस्यार्थ महेन्द्र पर्वत पर जाते हुए माता रेणुका से कहा कि 'तुम्हारे स्मरण करने पर मैं तत्काल चरणों में उपस्थित हो जाऊँगा । दीपावली के बाद शुक्ल पक्ष को दशमी को प्रति वर्ष मैं दर्शनार्थ आता रहूँगा ।'

उक्त 'दन्त-कथा' के आधार पर **'रेणुका-झील'** पर प्रति वर्ष एक सप्ताह - व्यापी मेला लगता है, जिसका वर्णन पहले ही हो चुका है । प्राचीन इतिहास के जाननेवाले जानते हैं कि महर्षि विश्वामित्र की बहन सत्यवती कौशिकी का विवाह भृगु ऋषि से हुआ था । इस दम्पत्ति की ज्येष्ठतम सन्तान महर्षि जमदग्नि या यमदग्नि हुए और इनके ज्येष्ठ पुत्र तपस्वी-महा-बली भगवान् परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रिय राजाओं को युद्ध में पराजित किया था । इस ऐतिहासिक तथ्य से उक्त दन्त-कथा की पुष्टि होती है । सम्भव है कि भगवान् परशुराम के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित अन्य सूचनाएँ भी किन्हीं शोध-प्रेमी पाठक के पास उपलब्ध हों । आशा है, इस लघु लेख को पढ़कर वे भी उन अज्ञात बातों को प्रकाशित कराकर लोगों की जिज्ञासा पूर्ण करने का यश प्राप्त करेंगे ।

श्री षोडश्यै नमः

• श्री बलराम दुबे,
७ नवल किशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

चिराग के तलवे से चिपके अन्धकार की तमन्ना
काँपती हुई लौ को हथेली से ढँकने की—
अन्तर्तम साधना।
प्रकाश में आने की शुभेच्छा विमर्ष की—
कामना एक श्यामला की—
शिव के अन्तस् में उतरने की—
षोडशी अभिप्रेरणा श्वेत-वर्णा-सी ।।
तपाग्नि से शान्त हुए उदर में उदय का आभास
लेने लगी है जन्म एक नवल अनुभूति—
मणिपुर-चक्र के आलोक में चमत्कृत
सूर्य-चाँद-अग्नि की सम्पुट बीज-शक्ति ।।

यह पर्व है स्फुरण का !

सम्हाल लें रथ श्रीभैरवी,
यह समय है षोडशी-अवतरण का ।।
शान्त हो अन्तस् की अग्नि—
निगलो शिवाग्नि पञ्च-भूतों की धूमावती,
अवसर है षोडशी-अवतरण का ।।
रोक लें वेग अभिचार कृत्या का,
माता श्री बगलामुखी—
अवसर है महा-शक्ति-स्पन्दन का ।।
गति हो नियन्त्रित दशेन्द्रियों की—
रथ, रथी, सारथी की।
भेदना है कमल-व्यूह, मन्त्रणा दो—
माता मातङ्गी श्री !
यह पर्व है पावन अवतरण का।
छलकाओ अमिय कलश पद्मावती कमला श्री !
उठाए हुए दम्भ-हीन सूँड़ छह—
आह्लादित है गजाकाश।
रस-गन्ध में नहाने का पर्व है दिशाओं का ।।
मन्त्रों के बीज में छिपी हुई ऊर्जा का—
सीता-राम के सम्पुट में तारा का—
यह पर्व है षोडशी के पावन अवतरण का ।।

भगवती का आमन्त्रण !

अन्तस् में स्नेह-लौ जलाए हुए बैठा हूँ।
आ देवी आ—
रस-स्नेह की गङ्गा में स्नान कर,
चाँद के अमृत में धुली हुई ऊर्जा का—
सूर्या के पावन पयोधरों का पान कर ।।
खुमार में डूबी हुई पलकों में,
सोने लगें बाहर के दृश्य जब—
विकसो विहँसती हुई गोद में अरुन्धती की।
सोलह वसन्तों की मादक खुमार लिए—
उतरो तू आँगन में षोडश-कलाओं-सी।
पुष्पों से लदी हुई लतिका लवङ्ग की।
तुझे छूकर हिलाऊँ—
तो महक उठे चन्द्रिका—
गन्ध-मय सरोवर में धुली हुई चाँद्रनी।

भगवती को अर्पण !

काम-धेनु गाय के दूध का सरोवर—
तुझे अर्पित है, मक्खन की स्नेहिल मृदु-लता—
सोलह वसन्तों का स्पर्शिल दुलार।
अर्पित है, परम ऐश्वर्य-मयी सम्पदा—
मणि-मय उद्यान ।।
वाटिका कदम्ब की, कल्प-द्रुम-छाँव।
रत्न-जटित रेशमी डोर का हिण्डोला—
ज्योतिर्मय मणिपुर का पावन स्थान।

भगवती का वाहन !

विरल हो व्याप्त पराग की सुगन्धि-सी,
कौन करे भार तेरा वहन पर ?
ब्रह्मा का इन्द्र-भार—
विष्णु की वरुण-धार––
मणिपुर महेश्वर का अग्नि-धाम ।
पाया जो चौथा है, अनहत के ईश्वर का––
उस दुर्लभ पर्यङ्क पर तेरा आवाहन है—
अर्पित सदा-शिव का पञ्च-मुखी आसन है ।
आओ, विराजो, स्वीकारो अकिञ्चन की—
कृपण दीन-हीनता, भाव-हीन विनय-गान ।।
ओ मणि-माणिक्य-मण्डिता !
श्वेता, शुभ-दर्शना !
आयुध भी तेरे सद्-रूप के समान ।
ईख के धनुष का रस-मय सन्धान—
पीत-पुष्प केसर-तुणीर काम-वाण ।
तेरे हाथ के पाश की––
बन्धक है माँ ! ऐश्वर्य-मयी दुनिया—
चरणों की दासी ।
हाथ के अंकुश की शासिता वसुन्धरा—
भ्रू-विलास—सत्-चित्-आनन्द-मेघ-वर्षण ।।

भगवती का दर्शन !

आया हूँ भूपुर के चार द्वार लाँघ कर—
गहरी त्रिवृत्तों की खाइयों को पाटकर,
सोलह दरवाजों के आकाशीय कमल-व्यूह—
मुख्य सिंह-द्वार पर । उठाता हूँ आँखें जब ऊपर—
तुझे देखता हूँ, सोलह प्रकोष्ठों से झाँकते हुए ।
उभरती है—भिन्न-भिन्न-सी आकृति अनेका की—
झंकृत स्वर-यन्त्रों से—
सोलह स्वर-मन्त्रों की भाव-मयी आरती ।।
पर देखना तो चाहता हूँ—
अन्तस् की झील में नहाई हुई एका को,
मणि-मय हिण्डोले में बैठी हृल्लेखा को—
षोडशी नवीना को—शिव-मय अभिन्ना को ।।

भगवती का आवाहन !

करता हूँ आवाहन—
तामसी दीवारों के विघटन का ।
अभिन्न चिर शाश्वत ज्योतिर्मय प्रज्वलन का ।
बीज-मय सम्पुट से षोडशी-अवतरण का ।।
आवाहित तुझे करता हूँ—
कि सूर्य और अग्नि की शाश्वत सुरक्षा में,
विकसो माँ ! करती हुई तृप्त तुम—
अन्तस् और बाहर की ज्वाला को ।
विकसित शरदेन्दु के शान्त-श्वेत अधरों की––
चन्द्रिका-सी विहँसो माँ ! ।।
अन्तस् की भूख को मिटाती हुई––
देखो दयार्द्र मुझे निर्निमेष पलकों से ।
करुणा-मयी अमिय कला षोडशी-सी बरसो माँ !।।

भगवती की कृपा-प्राप्ति !

करोड़ों उठे हुए हाथों के सूप में जगत् ।
आकाश को उलीचकर––
खोजती हुई आँखों में हीरे की चमक ! ।।
एक माह की कठिन तपस्या का फल––
अधरों पर आई हुई––
ईद के चाँद की मात्र एक झलक ! ।।
अनन्त-कोटि जन्मों के लुप्त-प्राय दृश्य—
पर्दे पर एक-एक उभारती हुई,
तानकर वितान—अनन्त गुह्य खाइयों को––
रोशनी के पुल से पाटती हुई ।।
और इस छोर पर अकिञ्चन बलराम––
कमजोर दो हाथों में पतङ्ग की डोर समेटता हुआ,
स्पर्श की आकांक्षा में आकर भी पास––
जाने कब से फड़फड़ाता हुआ ।
कभी हँसता, कभी रोता हुआ—
स्वयं से भागकर—नर्मदा के गर्भ में समाता हुआ ।
सन्त की आँखों में बहते हुए स्नेह से—
छानता मणि-मुक्ता,
तलाशता हुआ नर्मदा की धार में—
प्रस्तर सङ्गमरमरी—

पहचान का एक रिश्ता ।
तुझे खोकर भी पाता हुआ—
पाकर भुलाता हुआ ।।
पर, प्रहरी हों सूर्य जिस शाश्वत दहलोज के,
उसे कैसे करूँ पार ?
समेट लो चाँद ! बिखरी हुई चन्द्रिका को—
कल पर्व है षोडश कलाओं के वर्षण का ।।
तुझे पाने को आतुर उठी हुई बाँहों में—
ईद का चाँद ।
एक आइस-क्रीम हाथ में पिघलता हुआ—
अन्तस् की ज्वाला को करता हुआ शान्त—
रस-मय अहसास नेत्रों से भोगता हुआ ।।
हजार मणि-मुक्तों में—
अपनी ही छवि दर्शाती हुई दीप-शिखा ।
चमत्कृत छवि-गृह में जलती हुई एकाकी ।।
ओ एका !
अनेक तेरे रूप के प्यासे सु-चातक—
तुझे अपने ही कण्ठों में भरने को आतुर—
सृष्टि के अथ से इत्यन्तर के साधक ।।
ओ आदि-गुरु शङ्कराचार्य की माता—
सौन्दर्य-मयी शारदा—ओ षोडशी ललितेश्वरि !
अवधूत मणि-मण्डल की माता सर्वेश्वरी—
बौद्धों की तारा, जैनों की माता पद्मावती !
तुझे देखता हूँ, नाचती हुई, आरती की थाल में—
घण्टियों के नाद पर उठकर थिरकती हुई ! ।।
मन्दाकिनी की मन्थर तरङ्गों को—
राग में उठाकर ।
समीप मेरे आती हुई—
नर्मदा के अनहद के नाद में बहाती हुई ।।
आओ माँ ! बैठो माँ ! उतरो माँ, अन्तस् में !
मणि-मय सु-आसन तुझे अर्पित है ज्योतिर्मय ।
सन्तों के शाश्वत स्नेह से आपूर्य—
बैठा हूँ भाव-मयी ! आरती जलाए हुए ।
अनन्त-कोटि-जन्मों का आतुर इन्तजार—
आओ माँ ! उतरो माँ—अन्तस् में !
अर्पित है ज्योतिर्मय मणि-मय सु-आसन माँ ! ।।

पटना में 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' की गोष्ठी

२८ अप्रैल, १६६३
(प्रथम सत्र : प्रातः १० बजे से १ बजे तक)
योग-वेदान्त का ज्ञान-क्रिया-पक्ष
मुख्य अतिथि
डा० सोमानन्द नाथ

२८ अप्रैल, १६६३
(द्वितीय सत्र : मध्याह्न २-३० बजे से ५ बजे तक)
ज्योतिष एवं तन्त्र का व्यावहारिक पक्ष
मुख्य अतिथि
डा० बी० पी० साही
डा० रामपूजन तिवारी
श्री आर० के० नारायन
श्री एच० के० नारायन
श्री संजीवन मिश्र
श्री हरिजीत सिंह, श्री उमेश चन्द्र

२६ अप्रैल, १६६३
(प्रथम सत्र : मध्याह्न १ बजे से ३ बजे तक)
शाक्त-साधना के स्वर में राष्ट्रीय-सम्बोधन
मुख्य अतिथि
पं० रमादत्त शुक्ल

२६ अप्रैल, १६६३
(द्वितीय सत्र : सायं ५ बजे से ७ बजे तक)
मन्त्र-साधना का प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक-पक्ष
मुख्य अतिथि
पं० गोविन्दशरण उपाध्याय
द्वारा
'मन्त्र-कल्पतरु' पुस्तक-विमोचन

बिहार में शक्ति-साधना

बिहार में शक्ति-साधना
बिहार में शक्ति-साधना
बिहार में शक्ति-साधना

मूल्य
रु० दस
मात्र

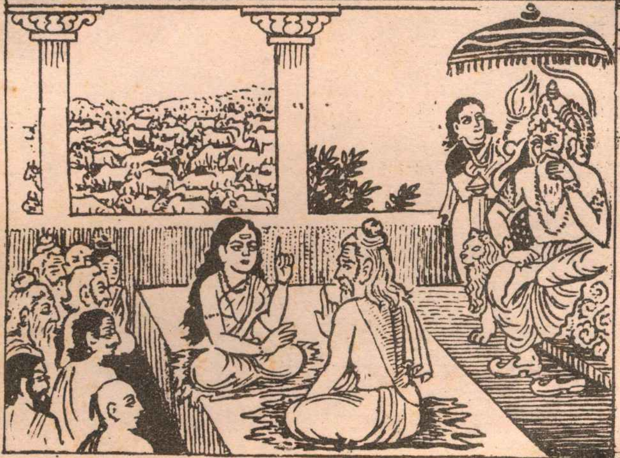

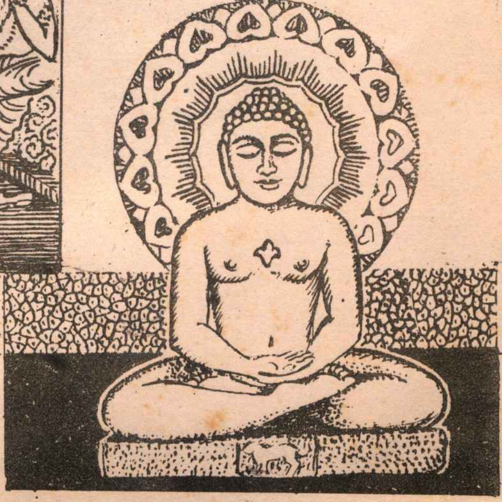

इतिहास एवं
प्रेरणा-दायक व्यक्तित्व पर
प्रकाश डालनेवाली सुन्दर पुस्तक।

रजि० संख्या 32981/57

वैशाख, २०५० वि०-- मई, १९९३

रजि० संख्या AD~96

'मन्त्र-साधना' जीव अर्थात् व्यक्तियों को 'श्रेय'-मार्ग पर ले जानेवाली प्रमुख साधना है।

युक्त रीति में 'मन्त्र' का 'जप', व्यक्ति के कल्याण का प्रधान हेतु है।

—गुप्तावतार बाबाश्री

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक : ऋतशील शर्मा

चण्डी - कार्यालय, पराबाणी प्रेस, प्रयाग २११००६